खड़ी बोली–पद्य का आंदोलन
और
अयोध्या प्रसाद खत्री

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के एम. फिल.
उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध

शोध–निर्देशक
डॉ. वीर भारत तलवार

शोध–छात्र
राजीव रंजन गिरि

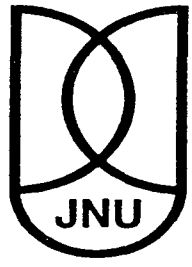

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2005

CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

Date : 18 July, 2005

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle " **Khari Boli Padya Ka Aandolan Aur Ayoddhaya Prasad Khatri** " by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

राजीव रंजन गिरि

(Rajeev Ranjan Giri)

Research Scholar

Vir Bharat Talwar

DR. VIR BHARAT TALWAR

(Supervisor)
CIL/SLL& CS/JNU

M. S. Husain

PROF. MOHD. SHAHID HUSAIN

(Chairperson)
CIL/SLL& CS/JNU

...श्रद्धेया दादी और नानी

के

असीम स्नेह को

विषय-सूची

लघु शोध-प्रबंध के बारे में	I-V
अध्याय : एक	
अयोध्या प्रसाद खत्रीः एक परिचय	1
अध्याय : दो	
खड़ी बोली-पद्य का आंदोलन	12
अध्याय : तीन	
खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन में अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका	80
उपसंहार	95
संदर्भ-सूची	100
परिशिष्ट	105

लघु शोध-प्रबंध के बारे में

मौजूदा दौर में हिंदी-कविता काफी विकास कर चुकी है। इस भाषा की कविता के पास कई श्रेष्ठ रचनाकार हैं। इन रचनाकारों को लेकर हिंदी कविता इतरा सकती है। जबकि इस भाषा की कविता का इतिहास महज सौ-सवा सौ साल का है। इन सौ-सवा सौ सालों में हिंदी कविता ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। इस बीच हिंदी के श्रेष्ठ रचनाकारों ने कई तरह के प्रयोग किए हैं। आज भी नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों को लेकर बहसें भी होती रही हैं। इन बहसों से हिंदी कविता का फायदा हुआ है। आज हिंदी में कई तरह के कवि सक्रिय हैं। सबकी रचनाओं का अपना महत्त्व है। आज की हिंदी-कविता को देखकर यह अंदाजा लगाना थोड़ा कठिन है कि इस भाषा को, एक दौर में कविता के काबिल नहीं समझा गया था। ऐसी समझ उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों से बीसवीं सदी के शुरूआती दो दशकों तक बनी रही। विडंबना यह है कि इसी भाषा के ज्यादातर साहित्यकारों की ऐसी समझ थी।

एक तरफ, देश-काल को अभिव्यक्ति करने की क्षमता के कारण खड़ीबोली गद्य की सराहना होती थी। इसके विकास के लिए चिंता प्रगट की जाती थी। दूसरी तरफ, काव्य-भाषा के मोर्चे पर इसे असफल करार दिया जाता था। साथ ही, ब्रजभाषा कविता को, खड़ीबोली हिंदी कविता की जगह मान्यता दी जा रही थी। कई वजहों से ब्रजभाषा कविता को हिंदी-कविता साबित करने की कोशिश हो रही थी। इसी कोशिश का नतीजा है कि हिंदी कविता को स्थापित होने में करीब तीस साल लग गए।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 1887 ई. में 'खड़ीबोली का पद्य' दो खंडों में छपवाकर, यह घोषणा की कि ब्रजभाषा कविता हिंदी कविता नहीं है। इस किताब के छपने के बाद काव्य-भाषा के सवाल पर काफी बहसें हुईं। हिंदी कविता की भाषा क्या हो-ब्रजभाषा या खड़ी बोली? तत्कालीन साहित्यकार इस मुद्दे पर दो हिस्से में बंट गए। एक पक्ष ब्रजभाषा के पक्ष में था तो दूसरा खड़ीबोली के पक्ष में।

गौरतलब है कि तत्कालीन बड़े साहित्यकार मसलन-राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण

मिश्र, बालकृष्ण भट्ट ब्रजभाषा के पक्ष में थे। श्रीधर पाठक, महेशनारायण, अंबिकादत्त व्यास, चंद्रशेखरधर मिश्र आदि खड़ीबोली के पक्ष में थे। तत्कालीन साहित्य-सत्ता पर 'भारतेंदु-मंडल' का दबदबा था। अयोध्या प्रसाद खत्री की मान्यता इनलोगों को पसंद नहीं थी। काव्य-भाषा के जरिए 'भारतेंदु-मंडल' और अयोध्या प्रसाद खत्री अपनी-अपनी भाषा-नीति को साहित्य में स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। ऐतिहासिक, राजनीतिक और भाषा-शास्त्र की दृष्टि से अयोध्या प्रसाद खत्री की मान्यता सही थी। फिर भी इनका विरोध हो रहा था। ऊपरी तौर से देखने पर ऐसा लगता है कि 'भारतेंदु-मंडल' के साहित्यकार बगैर सोचे-समझे ऐसा कर रहे थे। गहराई से देखने पर ऐसा नहीं लगता है। असल में, भाषा के जरिये वे लोग अपनी राजनीतिक दृष्टि को स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। भाषा को लेकर उनकी दृष्टि अलगाववादी थी।

मौजूदा दौर में खड़ी बोली हिंदी-कविता की भाषा पर मुग्ध होनेवाले ज्यादातर साहित्यकार उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हुए साहित्यिक विवाद को याद नहीं करते हैं। उस विपरीत माहौल में हिंदी के पक्ष में खड़े लोगों की भूमिका को स्वीकार नहीं करते है। कुछ लोग अज्ञानवश ऐसा करते हैं; जबकि कुछ लोग अतीत की जटिलता को जानबूझ कर नजरअंदाज करते हैं। अपनी विरासत को जानने के लिए उन्नीसवीं सदी की जटिलता को जानना जरूरी है। इस जटिलता की आलोचनात्मक पड़ताल किए बगैर तत्कालीन साहित्यिक-सत्ता-विमर्श को नहीं समझा जा सकता है। ब्रजभाषा और खड़ीबोली के जरिए हुए इस विवाद का विश्लेषण करने पर तत्कालीन साहित्यकारों के मनोविज्ञान, उनकी राजनीति और दृष्टि को परखा जा सकता है।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने ब्रजभाषा को काव्य-भाषा से विस्थापित कर खड़ीबोली को स्थापित करने के लिए आंदोलन की शुरूआत की। नतीजतन यह विवाद 'भारतेंदु-युग' से शुरू होकर 'द्विवेदी-युग' तक चलता रहा। हिंदी-साहित्य के इतिहासकारों एवं आलोचकों ने 'खड़ीबोली पद्य-आंदोलन' और इसके प्रवर्त्तक अयोध्या प्रसाद खत्री को उनके काम का वाजिब श्रेय नहीं दिया है। बल्कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे महत्वपूर्ण इतिहासकार ने तो अयोध्या प्रसाद खत्री के प्रति व्यंग्य किया है। डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्नीसवीं सदी के

साहित्य पर विचार किया है। इन्होंने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिंदी भाषा की विकास परंपरा' में ब्रजभाषा और खड़ी बोली विवाद के संदर्भ में जिस तरह से लिखा है; उससे भारतेंदु हरिश्चन्द्र इस मुद्दे पर खत्री जी से ज्यादा चिंतित नजर आते हैं। इन्होंने भी अयोध्या प्रसाद खत्री को इनके योगदान का वाजिब श्रेय नहीं दिया है। रामविलास जी ने 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में ब्रजभाषा-खड़ीबोली विवाद पर लिखते हुए, खड़ी बोली का पक्ष लेने के लिए द्विवेदी जी की काफ़ी सराहना की हैं। द्विवेदी जी को अयोध्या प्रसाद खत्री के आंदोलन की चेतना विरासत में मिली थी। इस प्रसंग में भी रामविलास जी ने अयोध्या प्रसाद खत्री और इसके आंदोलन की चर्चा नहीं की है। कुल मिलाकर, उन्नीसवीं सदी के साहित्येतिहास में अयोध्या प्रसाद खत्री का वाजिब मूल्यांकन नहीं किया गया है। ब्रजरत्नदास, डॉ शितिकंठ मिश्र, डॉ. कपिलदेव सिंह और डॉ. रामनिरंजन 'परिमलेंदु' ने इस आंदोलन पर लिखा है। ब्रजरत्नदास ने अयोध्या प्रसाद खत्री के योगदान को काफी कम करके आँका है। शेष तीनों लेखकों ने अयोध्या प्रसाद खत्री के योगदान को स्वीकार किया है। लेकिन ब्रजभाषा के समर्थक किस वजह से खड़ीबोली हिंदी कविता का विरोध कर रहे थे, इसके सही नतीजे तक नहीं पहुंच सके हैं।

ब्रजभाषा और खड़ीबोली-विवाद की राजनीति को समझने के लिए इस विषय को मैंने एम.फिल. कार्य के लिए चुना है। ब्रजभाषा और खड़ीबोली का विवाद द्विवेदी-युग तक चला। मैंनें इस लघुशोध प्रबंध में सिर्फ खत्री जी के आंदोलन को विषय बनाया है। समय-सीमा के कारण द्विवेदी-युग का अध्ययन संभव नहीं हो सका है। हालांकि शोध के सिलसिले में सामग्री एकत्र करते हुए, मैंने इस युग पर भी सामग्री एकत्र की हैं जिसका उपयोग इस लघुशोध-प्रबंध में नहीं कर सका हूँ। उन्नीसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने में मुझे उन्नीसवीं सदी की पत्र-पत्रिकाओं के अलावा डॉ. वसुधा डालमिया की 'द नेशनलाइजेशन ऑफ हिंदू ट्रेडिशंस', डॉ. वीरभारत तलवार की 'रस्साकशी', डॉ. आलोक राय की 'हिन्दी नेशनलिज्म' और डॉ. रामविलास शर्मा की किताबों से काफी मदद मिली है।

इस लघु शोध-प्रबंध के पहले अध्याय में अयोध्या प्रसाद खत्री का परिचय दिया गया है। एक मामूली शिक्षक और बाद में पेशकार की नौकरी करते हुए खत्री जी ने हिंदी

कविता के लिए महत्वपूर्ण आंदोलन शुरू किया। वे आजीवन खड़ीबोली के विकास के लिए काफी चिंतित रहे। दूसरे अध्याय, 'खड़ीबोली-पद्य का आंदोलन', में खत्री जी के आंदोलन से पहले छपी हिंदी कविताओं का उल्लेख है। 'खड़ी बोली का पद्य' छपने के बाद 'हिंदोस्थान' में लंबा विवाद चला। इसके आधार पर पक्ष और विपक्ष के मनोविज्ञान और तर्क में निहित राजनीति को समझने की कोशिश की गई है। तीसरे अध्याय, 'खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन में अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका', में इस आंदोलन के संदर्भ में खत्री जी के योगदान को परखा गया है। साथ ही हिंदी के विद्वानों ने खत्री जी की भूमिका का मूल्यांकन किस रूप में किया है--इसका विश्लेषण किया गया है। उपसंहार में इस लघु शोध-प्रबंध की स्थापनाओं को संक्षेप में रखा गया है। अयोध्या प्रसाद खत्री का पूरा साहित्य आचार्य शिवपूजन सहाय और प्रो. नलिन विलोचन शर्मा के संपादन में बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना से छपा है। इसमें 'खड़ी बोली का पद्य' की रचनाएं भी संकलित हैं। इसमें कई जगह अशुद्धियां हैं। सन् 1959 में मुज़फ़्फ़रपुर के साहित्यप्रेमियों ने अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति का गठन किया, साथ ही खत्री जी की रचनाओं को पुनर्प्रकाशित किया था। इस दौरान प्रो. विद्यानाथ मिश्र के संपादन में 'खड़ी बोली का पद्य' छपा। 'परिशिष्ट' में उन कविताओं को, दोनों संग्रहों से मिलाकर रखा गया है। इन्हीं कविताओं को लेकर अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली पद्य-आंदोलन की शुरूआत की थी। इस लिहाज से इनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

गुरूवर डॉ. वीर भारत तलवार ने शोध-कार्य के दौरान मेरी कई शंकाओं का समाधान किया। उस दौर की जटिलता के बारे में सवाल खड़ा करके मुझे सही दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया। डॉ. तलवार जैसे गंभीर आलोचक के निर्देशन में शोध करना--मेरे लिए गौरव की बात है।

प्रमोद भैया ने मुझे हिन्दी-साहित्य पढ़ाकर जेएनयू भेजा था। जेएनयू में एम.ए. और एम.फिल. के दौरान प्रो. केदारनाथ सिंह, प्रो. मैनेजर पाण्डेय, डॉ. वीर भारत तलवार, डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल, डॉ. ओम प्रकाश सिंह, डॉ. गोविंद प्रसाद, डॉ. देवेन्द्र चौबे, डॉ. रमण सिन्हा और डॉ. ज्योतिसर शर्मा से साहित्य पढ़ कर मेरी समझ विकसित हुई। मैं इन सभी गुरूजनों का कृतज्ञ हूँ।

डॉ. रामनिरंजन 'परिमलेंदु' एवं डॉ. उदयशंकर सिंह ने सामग्री जुटाने में मेरी मदद की। शालिनी श्रीवास्तव ने 'नागरी प्रचारिणी सभा' वाराणसी से कई पुरानी किताबों को खोजकर मेरे काम को आसान बना दिया। इन सबके प्रति आभार।

शोध-कार्य के सिलसिले में जेएनयू लाइब्रेरी, नेहरू म्यूजियम और पुस्तकालय, साहित्य अकादमी पुस्तकालय, मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली, शारदा सदन पुस्तकालय, लालगंज (वैशाली), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पुस्तकालय और सिन्हा लाइब्रेरी पटना के कर्मचारियों का सहयोग मिला। पटना में सुशील भैया, मधु भाभी एवं धर्मेन्द्र सुशांत जी और मुज़फ़्फ़रपुर में भाई नवेन्दु प्रियदर्शी ने काफी सहयोग किया। पापा जी, माँ और बड़े भाई मंजुल जी, प्रदीप जी तथा किशन जी का भावनात्मक सहयोग हमेशा साथ रहा। साथी अमरजीत, अभय, अरमान तथा बबलू ने प्रूफ पढ़ने में मदद की। प्यारे अनुज कौस्तुभ ने हर पल सहयोग किया। एम. प्रिंस ने टाइप कर मेरे शोध को आकार दिया। मैं इन सबको शुक्रिया अदा करता हूँ। यूजीसी के जूनियर रिसर्च फेलोशिप ने इस शोध-कार्य को आसान तथा संभव बना दिया।

राजीव रंजन गिरि

153, ब्रह्मपुत्र (ओल्ड),
जे.एन.यू.
नई दिल्ली-110067

अध्याय- 1

अयोध्या प्रसाद खत्री : एक परिचय

प्रथम अध्याय

अयोध्या प्रसाद खत्री : एक परिचय

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान सन् 1857 ई. में देश के कई कोने में विरोध हुआ। कई वजहों से यह विरोध सफल नहीं हो सका। कंपनी की सत्ता ने इस विरोध को कुचल दिया। इसी समय भारत की सत्ता कंपनी से महारानी (ब्रिटिश सत्ता) को हस्तांतरित हुई। इस नई सत्ता ने भारतीय जनता को कई सब्जबाग दिखाए। अब गवर्नर जनरल की जगह वायसराय बहाल होने लगे। इससे शासन के शोषण मूलक ढांचे में कोई अंतर नहीं आया। बल्कि शासन-तंत्र पहले से ज्यादा शातिर एवं निरंकुश हो गया। जिन इलाकों में कंपनी की सत्ता का प्रखर विरोध हुआ था, वहां सत्ता की निरंकुशता और बढ़ गई। इस वजह से काफी लोग अपना गांव छोड़कर दूसरी जगह जा बसे। तत्कालीन संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के बलिया जिले के सिकंदर पुर गांव के एक व्यवसायी जगजीवन लाल खत्री इसी उथल-पुथल के दौर में बिहार के मुजफ्फरपुर शहर में जा बसे। थोड़े दिनों बाद अपने परिवार को भी मुजफ्फरपुर ले आए। जगजीवन लाल खत्री के साथ उनकी पत्नी एवं तीन लड़के थे। जिनके नाम क्रमशः नारायण खत्री, अयोध्या प्रसाद खत्री और द्वारिका प्रसाद खत्री था। जगजीवन लाल खत्री की औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी फिर भी इन्हें संस्कृत, अरबी एवं हिंदी का सामान्य ज्ञान था। इन्होंने मुजफ्फरपुर शहर के कल्याणी में किताब की दुकान शुरू की।

अयोध्या प्रसाद खत्री की व्यवस्थित जीवनी श्री उमाशंकर ने लिखी है। उमाशंकर हिंदी साहित्य में एम.ए. करने के बाद प्रशासनिक सेवा में आए थे। खत्री के जीवन पर लिखनेवाले दूसरे लोगों ने भी उमाशंकर लिखित जीवनी को आधार बनाया है। हालांकि उमाशंकर के लेखन में विरोधाभास है जिसके कारण खत्री के जीवन से संबंधित कुछ मुद्दों पर मतैक्य का अभाव है। सन् 1959 ई. में मुजफ्फरपुर के बुद्धिजीवियों ने खत्री की जयंती मनाई, इसी क्रम में उन पर कुछ पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। 1960 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के शिवपूजन सहाय और प्रो. नलिन विलोचन शर्मा ने मुजफ्फरपुर के 'खत्री स्मृति समिति' से सामग्री लेकर

प्रकाशित किया। वर्ष 2003 में साहित्य अकादमी, दिल्ली ने 'भारतीय साहित्य के निर्माता' शृंखला के तहत डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु लिखित अयोध्या प्रसाद खत्री पर मोनोग्राफ प्रकाशित किया है।

अयोध्या प्रसाद खत्री का जन्म 1857 ई. में हुआ था। उनके जीवनीकारों ने किसी खास तिथि का जिक्र नहीं किया है। शैशवावस्था के बाद जब अयोध्या प्रसाद खत्री अपने भाईयों के साथ मुजफ्फरपुर आए तो पिता ने तीनों पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की। इनकी आरंभिक शिक्षा के बारे में उमाशंकर ने लिखा है कि "खत्री जी को जिस समय अक्षर आरंभ कराया गया था, उस समय स्कूलों और कचहरियों की भाषा उर्दू और फारसी थी। हिंदी का प्रवेश दोनों जगहों में निषेध था। लोग उन दिनों शिक्षा तो इसलिए पाते थे कि उन्हें कोई नौकरी मिल जाए। शिक्षा का अंतिम लक्ष्य था - नौकरी प्राप्त करना। नौकरी उन्हीं को मिलती थी जिन्हें उर्दू और फारसी का ज्ञान था। प्रचलित रीति के अनुसार अयोध्या प्रसाद खत्री को उर्दू-फारसी की शिक्षा देने के लिए एक मौलवी साहब घर पर आने लगे। वे बड़े ही सज्जन एवं विनोदी व्यक्ति थे। वे बड़े सरल और मनोरंजक ढंग से पढ़ाते थे।" थोड़े दिनों बाद मुजफ्फरपुर के एक स्कूल में इनका दाखिला कराया गया। स्कूल के दिनों से ही अयोध्या प्रसाद खत्री का रूझान सामाजिक सरोकारों की ओर दिखता है। आज की भांति उस दौर में भी प्रत्येक शुक्रवार को स्कूलों में मुसलमान विद्यार्थियों को नमाज अदा करने के लिए एक घंटे की छुट्टी मिलती थी। ऐसी सुविधा दूसरे धर्म के विद्यार्थियों को नहीं थी। खत्री ने अपने साथियों के साथ तत्कालीन हेडमास्टर को एक आवेदन-पत्र दिया। उस स्कूल के हेडमास्टर एक मुस्लिम थे। आवेदन-पत्र में प्रत्येक मंगलवार को एक घंटे सामूहिक पूजा-अवकाश की मांग की गई थी। हेडमास्टर को प्रत्येक मंगलवार एक घंटे की इजाजत देने के लिए शिक्षा-विभाग के आला अधिकारियों से आदेश लेना जरूरी था जिसमें काफी वक्त लगने की संभावना थी। इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों के समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि अगर वे इस छुट्टी के एवज में मंगलवार को एक घंटा अधिक पढ़ लें तो उन्हें छुट्टी देने में कोई परेशानी नहीं होगी। खत्री एवं उनके साथियों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने स्कूली जीवन में कई स्थानीय वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लिया था। कई बार पुरस्कृत भी हुए। इन्होंने अपने हमउम्र लड़कों की एक टोली बनाई थी। यह टोली विभिन्न अवसरों पर लगनेवाले मेलों में लोगों की समस्याओं का समाधान करती थी। उमाशंकर ने खत्री जी के स्वभाव के बारे में लिखा है कि "जहां कहीं भी अड़चनें पड़ती थी, वे शीघ्र ही उसे अपने हाथों में लेते थे। कभी-कभी उलझनदार समस्याओं को इस खूबी के साथ सुलझाते थे कि बड़े-बड़े लोग दंग रह जाते थे। कभी-कभी तो ऐसा अवसर उनके सामने आ जाता था कि उन्हें गुरूजनों एवं श्रद्धेय परिजनों के विरोध मे कदम उठाना पड़ता था। अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए किसी का भी विरोध कर सकते थे। सम्मानपूर्वक समझौता नहीं हो सका तो वे अकेले ही काम करते थे। अपने विपक्षियों का वे स्पष्ट शब्दों में, उनके मुंह पर ही विरोध करते थे।"[2] खत्री जी के बारे में उनके समकालीन लोगों ने उमाशंकर से एक घटना का जिक्र किया था। एक बार खत्री जी के एक ब्राह्मण पड़ोसी के घर में एकाएक आग लग गई। तब आग बुझाने की गाड़ी नहीं थी। कुंए से पानी खींचकर आग बुझानी पड़ती थी, जिसमें काफी वक्त लगता था। उस परिवार के लोगों को बचाने में खत्री जी के शरीर का कुछ हिस्सा जल गया, जो काफी इलाज के बाद ठीक हुआ। कुछ समय बाद मुजफ्फरपुर के जिला स्कूल में खत्री जी ने दाखिला लिया। इस समय तक आते-आते खत्री जी की दिलचस्पी सामाजिक सरोकारों में काफी बढ़ गई थी। उनके पिता को यह सब पसंद नहीं था। एण्ट्रेंस (आज का मैट्रिकुलेशन) की परीक्षा में शामिल हुए बगैर वे किताब के व्यवसाय में हाथ बंटाने लगे। गौरतलब है कि खत्री जी के बड़े भाई नारायण खत्री वकील बन गए थे और छोटे भाई द्वारिका प्रसाद खत्री पिता के साथ दुकान में बैठते थे। अगरचे पिता के दबाव के कारण अयोध्या प्रसाद खत्री किताब की दुकान में मदद करते थे लेकिन उनका मन इसमें नहीं लगता था। अबतक हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू एवं फारसी की जानकारी इन्हें हो गई थी। इसलिए मुजफ्फरपुर के एक विद्यालय मं जब इन्हें नौकरी मिली, तो सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस समय इनकी उम्र उन्नीस वर्ष (1876 ई.) थी। उस विद्यालय में बतौर हिंदी शिक्षक इनकी बहाली हुई थी। उस इलाके के स्कूल इंस्पेक्टर भूदेव मुखोपाध्याय (12-2-1825--16-5-1895)

एक बार खत्री जी के स्कूल में निरीक्षण करने गए। वे खत्री जी के अध्यापन से काफी प्रभावित हुए। इसके पहले खत्री जी की दो पुस्तकें 'संस्कृतजनित यावनी शब्दकोष' और 'हिंदी व्याकरण' छप चुका था। भूदेव मुखोपाध्याय बिहार के स्कूल में हिंदी माध्यम नागरी लिपि की पढ़ाई के आंदोलन के समर्थक थे। खत्री जी भी इस आंदोलन से जुड़े थे। इसका लाभ खत्री जी को मिला। भूदेव मुखोपाध्याय ने इनकी पदोन्नति कर कुड़हली नामक जगह के स्कूल में हेडमास्टर बना दिया। खत्री जी ने इस स्कूल में पांच वर्षों तक कार्य करने के बाद नौकरी छोड़ दी। खत्री जी ने यह नौकरी क्यों छोड़ दी? इस सवाल पर बगैर विचार किए डा. रामनिरंजन 'परिमलेंदु' आगे बढ़ गए हैं। खत्री जी के बारे में सर्वाधिक लिखनेवाले उमाशंकर के विचार भी इस सवाल पर अलग-अलग पुस्तकों में भिन्न-भिन्न है। उमाशंकर ने विद्यानाथ मिश्र द्वारा संपादित पुस्तक में लिखा है कि "शिक्षा समाप्त करने के बाद इन्होंने अध्यापन कार्य आरंभ किया। पर इनके समय में अध्यापकों को वेतन इतना कम मिलता था कि वे अपने परिवार का पालन ठीक से नहीं कर पाते थे। यही नहीं, एक दंतकथा उस समय की यह बताई जाती है कि खत्री जी स्वतंत्र विचार के व्यक्ति थे और उनके अध्यापन कार्य में व्यवस्थापकों की ओर से कुछ व्यवधान होने पर उन्होंने अध्यापन कार्य छोड़ दिया।"[3] सवाल उठता है कि कम वेतन मिलने की वजह से परिवार का पालन ठीक से न कर पाना, अगर नौकरी छोड़ने की वजह थी तो पांच वर्षों तक हेडमास्टर एवं उसके पहले कुछ वर्षों तक शिक्षक रहते हुए-इतने वर्षों तक परिवार का पालन कैसे करते थे? जो बात उमाशंकर ने दंतकथा के आधार पर लिखी है, उसपर सवाल उठता है कि उनके अध्यापन की स्वतंत्रता में व्यवस्थापकों द्वारा व्यवधान इसका कारण था तो थोड़े समय बाद समाहरणालय में लिपिक की नौकरी करना कैसे स्वीकार कर लिया? जिस समय खत्री जी ने नौकरी छोड़ी उस समय उनके प्रशंसक-समर्थक भूदेव मुखोपाध्याय स्कूल इंस्पेक्टर के पद पर कार्यरत थे। ऐसे में व्यवस्थापकों के बारे में इन्होंने अपने पदाधिकरी मुखोपाध्याय से शिकायत क्यों नहीं की? क्या स्कूल के हेडमास्टर से समाहरणालय के लिपिक को ज्यादा स्वतंत्रता मिलती है?

खत्री जी की जीवनी लिखते हुए उमाशंकर ने दूसरी जगह लिखा है कि "पिताजी की मृत्यु हो जाने के बाद उन्हें पुनः मुजफ्फरपुर आ जाना पड़ा। दुकान की स्थिति खराब होने लगी। भाई से अकेले दुकान चलना कठिन था। उन्होंने पहले तो चेष्टा की कि किसी प्रकार मुजफ्फरपुर के किसी स्थानीय स्कूल में बदली हो जाए। पर ऐसा संभव नहीं हो सका। अतः उन्होंने नौकरी छोड़ दी।"[4] उमाशंकर की लिखी यह बात सच्चाई के ज्यादा करीब लगती है। इन्होंने तीसरी जगह लिखा है कि "दुकान की स्थिति खराब हो जाने के कारण खत्री जी पहले तो किसी स्थानीय स्कूल में हिंदी के शिक्षक हुए, पर बाद में मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत कुड़हनी माइनर स्कूल में हिंदी शिक्षक नियुक्त हुए।"[5] उमाशंकर की पहली एवं दूसरी मान्यता एक ही साल (1959) छपी है जबकि तीसरी मान्यता एक साल बाद (1960) छपी है। एक ही लेखक के अलग-अलग विचार का यह बढ़िया (लेकिन दुःखद) उदाहरण है। इससे उमाशंकर के लेखन की अगंभीरता का पता चलता हैं

बहरहाल, कुड़हनी माइनर स्कूल से हेडमास्टरी छोड़ने के बाद खत्री जी मुजफ्फरपुर आ गए। अपनी दुकान का कामकाज छोटे भाई के साथ देखने लगे। पिता की मृत्यु के बाद दुकान की स्थिति चरमराने लगी थी। "उस समय सभी अंग्रेज सिविलियनों के नाम एक आदेश जारी किया गया था, शासितों की भाषा की उन्हें जानकारी होनी चाहिए। बिहार में सफल अधिकारी बनने के लिए यहां की भाषा की जानकारी अनिवार्य थी।"[6] किताब की दुकान पर बैठने के अलावा खत्री जी ने सिविलियन साहबों को हिंदी पढ़ाना शुरू किया। खत्री जी के जीवनीकारों का मानना है कि जिस समय वे किताब की दुकान में बैठने लगे थे, उस समय कामुकता भरी अश्लील पुस्तकों का प्रकाशन भी होता था। किताब के दुकानदारों को इसमें ज्यादा लाभ होता था। खत्री जी ऐसी किताबें दुकान में रखने के पक्ष में नहीं थे। जबकि इनके छोटे भाई ऐसी किताबें बेचने से परहेज नहीं करते थे। दोनों भाइयों के विचार इस मुद्दे पर एकदम भिन्न थे। द्वारिका प्रसाद खत्री ने एकबार एक किताब का आकर्षक विज्ञापन देखकर उसकी दस प्रतियां मंगवाई। अयोध्या प्रसाद खत्री ने इन पुस्तकों को दुकान में देखा। फिर इनकी कीमत खुद देकर बिक्री का रसीद काटकर

दुकान से उन किताबों को हटा दिया। इसकी चर्चा अपने छोटे भाई से नहीं की। जब द्वारिका प्रसाद को इसका पता चला तो उन्हें ग्लानि हुई शहर के अन्य दुकानदारों से भी ऐसी किताब न रखने का आग्रह अयोध्या प्रसाद खत्री करते थे। वे न सिर्फ अश्लील किताबों को बेचने के खिलाफ थे बल्कि जिन किताबों में अशुद्ध हिंदी छपी होती थी, उसे भी वे दुकानदानों को रखने से मना करते थे। खत्री जी के समकालीन शारदा प्रसाद भंडारी ने 'अयोध्या प्रसाद खत्री : एक शब्द चित्र' में एक ऐसी ही घटना का उल्लेख किया है। "खत्री जी एक बार काशी गए और हिंदी-पुस्तक-विक्रेता की दुकान पर जा धमके और कुछ हिंदी पुस्तकों को उठा-उठाकर देखने लगे। अभाग्यवश दो-एक पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर ही छापे की कुछ भद्दी भूलें रह गई थीं जिन्हें देखकर उन्हें क्रोध आ गया और तमक कर बोले-'आप हिंदी की पुस्तकें बेचते हैं या अशुद्ध हिंदी का प्रचार करते हैं?' विचारा दुकानदार खत्री जी की बातों को समझ न सका और उसने नम्रता पूर्वक पूछा-'क्या बात है?' खत्री जी ने उन पुस्तकों को इंगित कर उनकी अशुद्धियों को बतला दिया। ऐसा मालूम पड़ा कि खत्रीजी उन अशुद्ध पुस्तकों को पुनः छूकर अपवित्र होना नहीं चाहते थे।

"विचारे पुस्तक विक्रेता का सर झुक गया-पता नहीं, शर्म से उन अशुद्धियों के कारण या श्रद्धा से उस हिंदी के हिमायती खत्री जी के प्रति। पुस्तक-विक्रेता ने खत्री जी से नाम पूछा। उन्होंने कहा-"अयोध्या प्रसाद खत्री।"

"पुस्तक-विक्रेता जो इनके नाम और ख्याति से परिचित था बोल उठा-"क्या आप ही बाबू अयोध्या प्रसाद जी खत्री है?"

खत्री जी के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने कहा-"क्या आपको आज से पहले भी किसी अयोध्या प्रसाद खत्री ये भेंट हुई थी?

"पुस्तक-विक्रेता हंस पड़ा और बोला कि जैसा सुनता था ठीक उसी तरह मैंने पाया-बात बात में आलोचना और नुक्ताचीनी।

"फल यह हुआ कि उस पुस्तक-विक्रेता ने उन सारी पुस्तकों को जिनमें अशुद्धियां थी अपनी दुकान से हटा दिया और खत्री जी को विश्वास दिलाया कि वे

पुनः दुकान पर दिखलाई नहीं पड़ेंगी। खत्री जी ने उन पुस्तकों के मूल्य देने की चेष्टा की थी पर विचारे पुस्तक-विक्रेता ने अशुद्ध पुस्तकों को बेचकर पैसा लेना उचित नहीं समझा। उसने कहा-बाबू साहब, अब और शर्मिन्दा न कीजिए।"[7]

इस तरह की कई कथाएं खत्री जी के बारे में कही जाती हैं, जिसे उनके जीवनीकारों ने लिखा है। संभव है इन कथाओं में अतिरेक हो लेकिन इससे उनके व्यक्तित्व का भी पता चलता है।

अयोध्या प्रसाद खत्री से कोई लेखक अपनी रचना पर उनके विचार मांगता और अगर रचना में अशुद्धियाँ होती तो वे उस पर विचार प्रकट करने से इंकार कर देते थे। वे पहले अशुद्धियाँ ठीक करने को कहते थे। वे शहर में कहीं भी अशुद्ध साइनबोर्ड देखते थे तो उसके मालिक से शुद्ध कराने का आग्रह करते। अगर मालिक अपने खर्च से शुद्ध कराने में हिचकिचाता तो अपने खर्च से शुद्ध कराकर उक्त स्थान पर टंगवा देते थे। इनके बारे में लिखनेवालों ने ऐसी कई घटनाओं का जिक्र किया है।

सिविलियन साहबों को पढ़ाने का नतीजा यह हुआ कि उन्हें 1886 ई. में समाहरणालय में लिपिक की नौकरी मिल गई। इस परिचय का खत्री जी को काफी लाभ मिला। कुछ महीने बाद वे लेखापाल हो गए। फिर अभिलेख शाखा के लिपिक प्रभारी बने। अंततः कलक्टर के पेशकार बने, इस पद पर अंतिम समय तक बने रहे। समाहरणालय मे काम करते हुए खत्री जी ने 'खड़ी बोली पद्य का आंदोलन' शुरू किया। जब खत्री जी स्कूल में शिक्षक थे तब काफी परिश्रम के बाद पाठ्यक्रम में खड़ी बोली गद्य शामिल हुआ था लेकिन पद्य अवधी एवं ब्रजभाषा का रहा। यह बात इन्हें खटकती थी। गद्य में खड़ी बोली लेकिन पद्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। खत्रीजी किशोरावस्था से ही खड़ी बोली में तुकबंदियाँ करते थे। खासतौर से होली के समय ऐसी तुकबंदियाँ छपवाकर लोगों में वितरित करते थे। खत्री जी अपने पद्य आंदोलन में जुटे रहे। इन्होंने अपने छाते पर 'शुद्ध हिंदी का प्रयोग करें' लिखवाया था। जब किसी से मिलते तो 'जय हिंदी' कहकर अभिवादन करते एवं पूछते "कहिए कोई नई लिटरेरी न्यूज है?"

'खड़ी बोली का पद्य आंदोलन' प्रारंभ करने से पहले खत्री जी की दो किताबें--'संस्कृत जनित यावनी शब्दकोष' एवं 'हिंदी व्याकरण' छप चुकी थीं। 'संस्कृत जनित यावनी शब्दकोष' खत्री जी की पहली प्रकाशित किताब है। यह किताब अब उपलब्ध नहीं है। राष्ट्रभाषा परिषद् के खत्री स्मारक गंथ में भी इसे संकलित नहीं किया गया है। अब सिर्फ इसकी चर्चा मिलती है। कलकत्ता से प्रकाशित हिंदी साप्ताहिक पत्र 'सार सुधानिधि' के 28 जुलाई 1879 के अंक में इसकी समीक्षा छपी थी जिसमें कहा गया है कि "यह भी श्री युत बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने बनाया है, इन्होंने बहुत परिश्रम से इस छोटी सी पुस्तक में अंदाज 200 शब्द ऐसे संग्रह किए हैं कि जिनका मूल संस्कृत है उसी का अपभ्रंश, फारसी अथवा अरबी में जैसा हो गया है, वह लिखा है। ग्रंथकर्त्ता का तात्पर्य यह है कि यावत् भाषा प्रचलित है, प्रायः सभी का मूल संस्कृत है। यद्यपि अंग्रजी कोषकारों ने इसको स्वीकार कर लिया और अपने बनाए कोषों में संस्कृत मूल धातुओं का चिह्न लिखा है। किंतु अरबी, फारसी वालों ने वैसा नहीं लिखा तो इसलिए ऐसा होना आवश्यक था।"[8] इसके साथ ही खत्री जी की दूसरी किताब 'हिंदी व्याकरण' के पहले पृष्ठ पर (हिंदी व्याकरण, जिसको 'संस्कृत जनित यावनी शब्द संग्रह' के ग्रंथकर्त्ता अयोध्या प्रसाद खत्री ने बनाया) इसकी सूचना छपी है, जिससे इसकी जानकारी मिलती है।

1877 ई. में खत्री जी की दूसरी किताब 'हिंदी व्याकरण' बिहार-बंधु प्रेस, बांकीपुर पटना से प्रकाशित हुई। इसकी कीमत चार आना था। इस किताब का दूसरा संस्करण खड़गविलास प्रेस, पटने से छपा था। तत्कालीन साप्ताहिक पत्र 'बिहार बंधु' में 28 जनवरी (बुधवार) 1880 को इसकी समीक्षा छपी थी जिसमें कहा गया है "इसके ग्रंथकर्त्ता मुजफ्फरपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री हैं। इस किताब के पेश्तर एक किताब और बनाई थी। उसका नाम 'संस्कृत जनित-यावनी-शब्द-संग्रह है। क्या खूब होता कि अगर बाबू साहब इसी किताब को पहले बनाते। आपकी बनाई हुई पहली किताब जितनी खराब है यह किताब उतनी ही उम्दे है। इस किताब को बे ऐब तो नहीं कह सकते, मगर हां इतना कह सकते हैं कि इस जुबान में जितने व्याकरण हैं, बहतों से बहुतेरी बातों में यह अच्छी बनी है। क्रिया तो किसी व्याकरण में अच्छी तरह नहीं लिखा हैं। इस ऐब से तो यह व्याकरण

भी मुक्त नहीं है।[9]

इन किताबों के बाद लगभग दस साल तक खत्री जी की कोई किताब नहीं छपी। 1887 ई. में इनकी दो पुस्तिकाएं लिथो मुद्रण में छपीं। सोलह पृष्ठों की 'छंद भेद' (मौलवी स्टाइल की हिंदी का) तथा तीस पृष्ठों की 'मौलवी साहब का साहित्य' छपा। इन दोनों पुस्तिकाओं के प्रकाशक अयोध्या प्रसाद खत्री स्वयं थे। 1887 ई. में ही खत्री जी के संपादन में 'खड़ी बोली का पद्य' (पहिला भाग) प्रकाशित हुआ। यह किताब विश्वनाथ भट्ट द्वारा नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुई थी। इसके छपने के बाद ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का विवाद प्रारंभ हुआ। इसी किताब की वजह से खत्री जी की पहचान बनी। इस किताब में खत्री जी ने खड़ी बोली को पांच भागों में-ठेठ हिंदी, पंडित हिंदी, मुंशी हिंदी, मौलवी हिंदी और यूरेशियन हिंदी में विभक्त किया है। दो साल बाद (1889 ई. में) नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर से 'खड़ी बोली का पद्य (दूसरा भाग) प्रकाशित हुआ। इन दोनों किताबों के छपने के बाद रचनाकारों का समूह दो भाग में बंट गया। कुछ लोग खड़ी बोली के समर्थन में थे और ज्यादातर लोग ब्रजभाषा के। इन दोनों समूहों में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में बहस-मुबाहिसा हुआ, खत्री जी ने संकलित किया था। यह पं. भुवनेश्वर मिश्र के संपादन में 'खड़ी बोली का आंदोलन' नाम से प्रकाशित हुआ। खत्री जी कहीं भी कुछ पढ़ते अगर उसमें अशुद्ध होता तो उसे शुद्ध कर देते थे। अपने पास आनेवाली चिट्ठियों की गड़बड़ी भी सुधारकर बताते थे। इन्होंने ऐसा तत्कालीन बड़े लेखकों के साथ भी किया। इसकी वजह से उन्हें लेखकों की नाराजगी का दंश भी झेलना पड़ा। खत्री जी ने अपने विरोधियों, समर्थकों की गड़बड़ियों को सुधार कर 'छोटी-छोटी बातों में नुक्ताचीनी' शीर्षक से छपवाया था। यह किताब भी उपलब्ध नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि खत्री जी कविताएं लिखते थे। प्रो. विद्यानाथ मिश्र[10] को पांडुलिपि जीर्ण शीर्ण हालत में मिली थी। संभवतः इसका प्रकाशन नहीं हो सका। 4 जनवरी 1905 ई. को प्लेग से अयोध्या प्रसाद खत्री का निधन हो गया।

संदर्भ ग्रंथ

1. खड़ी बोली कविता के प्रवर्तक स्वर्गीय अयोध्या प्रसाद खत्री, श्री उमाशंकर, (अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति, विश्लेषण कार्यालय, साहुरोड, मुजफ्फरपुर, बिहार, 1959) पृष्ठ-10
2. वही, पृष्ठ-16
3. बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री, संपादक-प्रो. विद्यानाथ मिश्र, एम.ए. प्रकाशन, वही, पृष्ठ-2
4. खड़ी बोली कविता के प्रवर्तक स्व. अयोध्या प्रसाद खत्री, पृष्ठ-33
5. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, संपादक-शिवपूजन सहाय, प्रो. नलिन विलोचन शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1960, पृष्ट-308
6. खड़ी बोली कविता के प्रवर्तक स्वर्गीय अयोध्या प्रसाद खत्री, पृष्ठ-33-34
7. बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री, पृष्ठ-36-37
8. अयोध्या प्रसाद खत्री-रामनिरंजन परिमलेंदु, साहित्य अकादमी-2003 पृष्ठ-30 पर उद्धृत
9. वही, पृष्ठ-34 पर उद्धृत
10. 1958 में स्थापित अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति के संयोजक, मुजफ्फरपुर के एक कॉलेज में अध्यापन करते थे। 'विश्लेषण ' नामक पत्रिका के संपादक थै।

अध्याय-दो

खड़ी बोली-पद्य का आंदोलन

अध्याय-दो

खड़ी बोली-पद्य का आंदोलन

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 1887 ई. में 'खड़ी बोली का पद्य' (पहिला भाग) का संपादन किया। यह किताब मुज़फ़्फ़रपुर के बिश्वनाथ भट्ट द्वारा नारायण प्रेस से छपी। खत्री जी ने इसे *'Poetical reader No. 1 of Khari Boli'* के रूप में प्रस्तुत किया। यह किताब तीन परिच्छेदों में बंटी हुई है--ठेठ हिन्दी, मुंशी स्टाइल और पंडित स्टाइल। ठेठ हिन्दी के उदाहरण के तौर पर राजा शिवप्रसाद संग्रहित गुटका नं-3 से लेकर मुंशी इंशाअल्ला खां की रचना[1] 'रानी केतकी की कहानी' में मौजूद पद्य को शामिल किया गया है। मुंशी स्टाइल के तौर पर राय सोहनलाल की 'हिन्द में सतयुग समां' 'पतङ्ग', 'सोने और ढोल की दो-दो बातें', 'चांदनी का समां और उसके नूर की झलक', भारतेंदु हरिश्चन्द्र की 'दशरथ विलाप', 'बसंत', 'बर्सात', महेश नारायण की 'स्वप्न' शीर्षक लंबी कविता और मौलवी अल्ताफ हुसैन की 'एक बेवे की मुनाजात' शीर्षक रचना शामिल की गई है।

पंडित स्टाइल के तौर पर मुज़फ़्फ़रपुर जिला के मौजे मानपुरा निवासी बाबू लक्ष्मी प्रसाद की 6 दिसंबर 1876 ई. को 'बिहार बंधु' में प्रकाशित कविता[2] के अलावा 'योगी' शीर्षक लंबी कविता शामिल की गई है। इसी स्टाइल के अंतर्गत्त श्री सत्यानंद अग्नहोत्री की 'संगीत पुष्पावली' से तीन भजन और "चंद कबि प्राचीन कृत ('पृथ्वीराज रायसा, पद्मावती खंड, से)"[3] दो छप्पय एवं एक दोहा (आल्ह खंड से) भी शामिल किया गया है।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' (पहिला भाग) की छोटी-सी भूमिका लिखी है। इस भूमिका में इनके भाषा-संबंधी विचार अभिव्यक्त हुए हैं। खत्री जी ब्रजभाषा छंद को हिन्दी छंद नहीं मानते थे। इस किताब की भूमिका में इन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है "मैं भाषा-छंद को हिन्दी-छंद नहीं मानता हूं।"[4] अपने विचार

को स्पष्ट करते हुए अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है ''लल्लूलाल ने अपनी समझ में 'प्रेमसागर' खड़ी बोली में और 'राजनीति' ब्रजभाषा में लिक्खी। 'राजनीति' के पद्य की भाषा और 'प्रेमसागर' के पद्य की भाषा में कुछ अंतर नहीं है। 'प्रेमसागर' के पद्य की भाषा निस्संदेह ब्रजभाषा है। हिन्दी के कुल लिखैये, मैं समझता हूँ, इन्हीं का अनुकरण करते हैं। मुंशी मक्खनलाल खत्री ने अपने 'सुख सागर' की भाषा का दो भाषाओं में लिक्खा जाना लिक्खा है : - गद्य 'खड़ी बोली' में और पद्य 'ब्रजभाषा' में।''[5]

खत्री जी का मानना बिलकुल सही है कि 'राजनीति और 'प्रेमसागर' की पद्य-भाषा में फ़र्क नही है। भले ही लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' की भाषा को खड़ी बोली बताया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लल्लूलाल की भाषा पर जो टिप्पणी की है, उससे खत्री जी की उक्त मान्यता पुष्ट होती है। लल्लू लाल की भाषा की विशेषता बताने के लिए शुक्ल जी ने जहां इंशाअल्ला खां, मुशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा से लल्लू लाल की भाषा की तुलना की है; उसपर गौर करना जरूरी है। शुक्ल जी ने लल्लू लाल का परिचय देने के तुरंत बाद लिखा है ''इंशा के समान इन्होंने केवल ठेठ हिंदी लिखने का संकल्प तो नहीं किया था पर विदेशी शब्दों के न आने देने की प्रतिज्ञा अवश्य लक्षित होती है। यदि ये उर्दू न जानते होते तो अरबी-फारसी के शब्द बोलचाल की भाषा में इतने मिल गए थे कि उन्हें केवल संस्कृत हिन्दी जानने वाले के लिए पहचानना भी कठिन था।.....लल्लूलाल जी अनजान में कहीं-कहीं ऐसे शब्द लिख गए हैं जो फारसी या तुरकी के हैं।.....पर ऐसे शब्द दो ही चार जगह आए हैं''[6] आगे शुक्ल जी ने मुंशी सदासुखलाल की भाषा से लल्लू लाल की भाषा की तुलना की है। ''यद्यपि मुंशी सदासुखलाल ने भी अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग न कर संस्कृत मिश्रित साधु भाषा लिखने का प्रयत्न किया है पर लल्लू लाल की भाषा में उसमें उससे बहुत कुछ भेद दिखाई पड़ता है। मुंशी जी की भाषा साफ-सुथरी खड़ी बोली है पर लल्लू लाल की भाषा कृष्णोपासक व्यासों की-सी ब्रजरंजित खड़ी बोली है। 'सम्मुख जाय', 'सिर नाय', 'भई', 'कीजै', 'निरख', 'लीजौ' ऐसे शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। अकबर के समय में गंग कवि ने जैसी खड़ी

बोली लिखी थी वैसी ही खड़ी बोली लल्लू लाल ने भी लिखी। दोनों की भाषाओं में अंतर इतना ही है कि गंग ने इधर-उधर फारसी-अरबी के प्रचलित शब्द भी रखे हैं पर लल्लू लाल जी ने ऐसे शब्द बचाए हैं। भाषा की सजावट भी प्रेमसागर में पूरी हैं विरामों पर तुकबंदी के अतिरिक्त वर्णन वाक्य भी बड़े-बड़े आए हैं और अनुप्रास भी यत्र-तत्र हैं। मुहावरों का प्रयोग कम है। सारांश यह कि लल्लू लाल की काव्य भाषा गद्य भक्तों की कथावार्ता के काम का ही अधिकतर है, न नित्य वयवहार के अनुकूल है, न संबद्ध विचारधारा के योग्य।"[7] शुक्ल जी ने सदल मिश्र की भाषा की विशेषता बताने के लिए लल्लू लाल से तुलना की है। इन्होंने लल्लू लाल से सदल मिश्र के भाषाई-फ़र्क को स्पष्ट करते हुए लिखा है "लल्लू लाल के समान इनकी भाषा में न तो ब्रज भाषा के रूपों की वेसी भरमार है और न परंपरागत काव्य भाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश।"[8] मुंशी सदासुखलाल नियाज, इंशाअल्ला खां, लल्लू लाल और सदल मिश्र की गद्य-भाषा की तुलनात्मक पड़ताल के बाद शुक्लजी ने निष्कर्ष निकाला है कि "गद्य की एक साथ परंपरा चलानेवाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा -पूरा आभास मुंशी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। इन दो में भी मुंशी सदासुख की साधु-भाषा अधिक महत्व की है।"[9] गौरतलब है कि शुक्ल जी ने चारों लेखकों की गद्य-भाषा को केन्द्र में रखा है। सिर्फ एक जगह--जहां वे सदल मिश्र से लल्लू लाल की भाषा की तुलना करते हैं--लल्लू लाल की पद्य-भाषा की तरफ इशारा है। सदल मिश्र और लल्लू लाल दोनों फोर्ट विलियम कॉलेज में काम करते थे। कॉलेज के अधिकारियों के आदेशानुसार दोनों ने खड़ी बोली गद्य में किताबें तैयार की। जिस समय लल्लू लाल 'प्रेमसागर' लिख रहे थे, उसी समय सदल मिश्र 'नासिकेतोपाख्यान' लिख रहे थे। आचार्य शुक्ल ने इन्हीं दोनों किताबों के भाषाई-फर्क को बताया है। शुक्ल जी ने लिखा है कि लल्लू लाल की तरह सदल मिश्र की भाषा में ब्रजभाषा के रूपों की भरमार नहीं है। इसके साथ ही 'परंपरागत काव्यभाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश' भी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जिसे 'परंपरागत काव्य भाषा' कहते हैं, वह कौन-सी भाषा है? दरअसल

परंपरागत काव्य भाषा ब्रजभाषा ही थी, जिसका जगह-जगह समावेश किया गया था। अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'प्रेमसागर' के गद्य-पद्य की भाषा को ठीक समझा था। मुंशी सदासुखलाल से तुलना करते हुए शुक्ल जी ने नोट किया है कि लल्लू लाल की काव्य भाषा गद्य भक्तों की कथावार्ता के काम की थी। असल में लल्लू लाल अपनी समझ से 'राजनीति' ब्रजभाषा गद्य में और 'प्रेमसागर' खड़ी बोली में लिख रहे थे। इन दोनों रचनाओं में गद्य के साथ पद्य भी लिखा गया है। लल्लू लाल ने 'राजनीति' में जिस पद्य भाषा का उपयोग किया है, 'प्रेमसागर' में भी उसी पद्य भाषा का उपयोग किया है। 'प्रेमसागर' के पद्य खड़ी बोली में नहीं हैं। दोनों की पद्य-भाषा एक ही रही, उन्हें इसका अहसास नहीं था। यह पद्य-भाषा ब्रजभाषा थी। मक्खन लाल खत्री की तरह ललल्लू लाल गद्य-पद्य के भाषाई-फ़र्क को नहीं समझ रहे थे। इसीलिए अयोध्या प्रसाद खत्री ने अपनी समझ के मुताबिक खड़ी बोली हिन्दी को परिभाषित किया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने भूमिका में 'खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रजभाषा छंद को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में *Poetical License* समझना, हिन्दी वैयाकरण की भूल' माना। इसके साथ ही चंदवरदाई की हिंदी को 'पुरानी हिन्दी' और आधुनिक हिंदी को 'खड़ी बोली' कहा है। इसी भूमिका में खत्री जी ने आधुनिक हिंदी (जिसे वे 'खड़ी बोली' कहते थे) को पांच शैलियों में बांटा है। इन्होंने लिखा है कि "खड़ी बोली' के मैंने पांच भेद माने हैं; ठेठ हिन्दी, पण्डित जी की हिन्दी, मुंशी जी की हिन्दी, मोलवी (मौलवीं पढ़ें) साहब की हिन्दी और यूरेशियन हिन्दी।"

"ठेठ हिन्दी वह है कि जिसमें न विदेशी शब्द हों और न संस्कृत के कठिन शब्द। इसमें 'तद्भव' और 'देशज' शब्द अधिक रहते हैं। पण्डित जी की हिन्दी में संस्कृत के बड़े-बड़े और कठिन शब्द रहते हैं, विदेशी शब्द प्रायः नहीं रहते हैं।"

"मुंशी जी की हिन्दी पण्डित जी और मोलवी (मौलवी) साहब की हिन्दी के बीच की हिन्दी है और इसको यूरोपियन विद्वान हिन्दुस्तानी कहते हैं।"

मोलवी साहब की हिन्दी फारसी, अरबी (कठिन तत्सम) संज्ञाओं से भरी

रहती है। इसको मोलवी (मौलवी) साहब उर्दू कहकर पुकारते हैं।

यूरेशियन हिन्दी में अंगरेजी के तत्सम संज्ञा शब्द आते हैं। मोलवी (मौलवी) साहब फारसी और यूरोपियन अंगरेजी अक्षर पसंद करते हैं।"[10]

खड़ी बोली की पांच शैली *(style)* निश्चित करने के बाद खत्री जी ने कहा कि "खड़ी बोली में पण्डित जी ने पद्य लिखने की आजतक चेष्टा नहीं की है। इसके कवि केवल मोलवी साहब हैं.....कवि कङ्कण, चण्डी, विद्यापति, गोबिंददास, इत्यादि इनके प्राचीन कविगण की भाषा वर्तमान ब्रजभाषा और मैथिल भाषा से बिलकुल मिली हुई है। जैसे बंगला भाषा के पद्य की भाषा का संस्कार हुआ है, वैसा ही हिन्दी भाषा का भी होना चाहिये।"[11]

बंगला भाषा की पद्य-भाषा के संस्कार की तरह हिन्दी-पद्य-भाषा के संस्कार की उम्मीद में खत्री जी ने 'खड़ी बोली का पद्य' (पहला भाग) को छपवाकर विद्वानों, पाठकों के समक्ष पेश किया। 'खड़ी बोली का पद्य' के छपने के साथ खत्री जी ने ब्रज भाषा कविता और खड़ीबोली (हिन्दी) कविता में फ़र्क किया। साथ ही तत्कालीन साहित्यकारों से खड़ीबोली में कविता करने की अपील की। ब्रजभाषा काव्य के समर्थकों को यह गवारा न था। ब्रजभाषा के ज्यादातर रचनाकारों ने 'खड़ी बोली का पद्य' का विरोध किया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' छपने से पहले डमी कापियां अपने मित्रों, मित्र-साहित्यकारों, साहित्य के पाठकों और कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के पास भेजी थी। यही वजह है कि किताब छपने से पहले इसकी समीक्षा छपनी शुरू हो गई। इस किताब का समर्थन करते हुए अम्बिकादत्त व्यास के संपादन में प्रकाशित 'पीयूष प्रवाह' मासिक पत्र में 20 जून 1887 को 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक टिप्पणी छपी। "इस नाम का ग्रंथकार मुज़फ़्फ़रपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने बनाया है। ग्रंथकार का प्रधान उद्देश्य इसके नाम ही से प्रगट होता है अर्थात् आजकल की प्रायः यह रीत पड़ गई है कि लोग यदि खड़ी बोली में भी कोई ग्रंथ लिखते हैं तो जब उसमें कोई छंद लिखना होता है तो बृजभाषा में लिख मारते

हैं। कितने ही ग्रंथकार खड़ीबोली में यत्न ही नहीं करते और कितने कहते है कि इस भाषा में पद्य आजतक बना ही नहीं। बस यह ग्रंथ इसी अभाव के पूरे करने को है कि खड़ी बोली में भी पद्य होते हैं और बहुत बन चुके हैं। ग्रंथकार ने इसमें ठेठ हिन्दी आदि प्रकरण अलग-अलग बांध दिये हैं यह और भी उत्तम हुआ है। इस ग्रंथ में सब पद्य संग्रह किऐ हुए हैं। हम जहां तक देखते हैं ग्रन्थकार ने अपने उद्देश्य साधन में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस भाषा में पद्य भी बनने लगे, इसका उद्योग ब्राह्मण और हिन्दी प्रदीप के संपादक भी कुछ कर चुके हैं और इस ढंग की कविताओं के विरोधी हम भी नहीं हैं। हम ग्रंथकार को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि उनकी लेखनी ऐसे ही उत्तम संग्रह किया करैं।"[12] 'पीयूष-प्रवाह' मासिक में छपी यह टिप्पणी 'खड़ी बोली का पद्य' की पहली प्रकाशित समीक्षा है। कलकत्ता से छपनेवाला हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'भारत मित्र' ने 7 जुलाई 1887 को इस किताब को धन्यवादपूर्वक स्वीकार करते हुए लिखा कि "खड़ी बोली का पद्य'-पहिला भाग श्रीयुत बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री रचित प्रकाश हुआ है, इस पुस्तक में मुंशी स्टाइल और पंडित स्टाइल की पद्य फुटकर लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक अभी तक कोई नहीं छपी है जैसी कि यह है, पद्य रसिकों को एक 2 प्रति अवश्य ग्रंथकर्ता मोज़फ़्फ़रपुर से मंगाकर रखनी चाहिए।"[13] इससे खत्री जी का उत्साह बढ़ा। किताब छपने के बाद इन्होंने शिक्षाविदों, साहित्यकारों, साहित्य-प्रेमियों, पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों को मुफ्त में भेजा। जिस किसी के बारे में बताया जाता था कि अमुक व्यक्ति साहित्य से थोड़ा-बहुत सरोकार रखता है, खत्री जी उसे यह किताब जरूर भेजते थे। नतीजतन कुछ ही माह बाद पहले संस्करण की किताबें खत्म हो गई पहले संस्करण में इस किताब की कितनी प्रतियाँ छपी थीं, इसका पता नहीं चलता है। पहले संस्करण के खत्म होने के बाद उसी साल (1887 ई.) खत्री जी ने इसका दूसरा संस्करण छपवाया। दूसरा संस्करण भी नारायण प्रेस से छपा। इस संस्करण में 1638 प्रतियां छपी।[14] 'खड़ी बोली का पद्य' संकलन के लिए अयोध्या प्रसाद खत्री को पत्र भेज कर कई लोगों ने सराहना की। चिट्ठी लिखकर सराहना करनेवालों में बनारस नार्मल स्कूल के हेडमास्टर जयनारायण मिश्र, बनारस के स्कूल-इंस्पेक्टर लक्ष्मी शंकर

मिश्र, मुज़फ़्फ़रपुरके स्कूल-डिप्टी इंस्पेक्टर राम प्रकाश लाल, आरा के स्कूल-डिप्टी इंस्पेक्टर परमानंद, राज दरभंगा के स्कूल-डिप्टी इंस्पेक्टर गनेश प्रसाद और जिला स्कूल मुज़फ़्फ़रपुर के अध्यापक शालिग्राम तिवारी तथा पंडित गङ्गधर शास्त्री प्रमुख थे। इन लोगों ने साहित्य के सामान्य पाठकों के अलावा नार्मन स्कूल और वर्नाक्यूलर स्कूल के छात्रों तथा शिक्षकों के लिए इसे काफी उपयोगी बताया।[15] इन लोगों के उत्साहवर्द्धक पत्र से खत्री जी का मनोबल बढ़ा। 'बलवंत भूमिहार' और 'घराऊ घटना' के लेखक भुवनेश्वर मिश्र ने लिखा है कि "विशुद्ध हिन्दी साहित्य के पद्य विभाग का संस्कार आवश्यक समझकर बाबू अयोध्या प्रसाद जी ने कई सौ रूपये खर्च करके इस अभिप्राय से इस पुस्तक को छपवाया था और बिना मूल्य तथा बिना डाक-महसूल हिंदी रसिकों के बीच वितरित किया था (और अभी तक कर रहे हैं) कि लोगों का ध्यान खड़ी बोली पद्य की ओर झुके और इस विषय में आंदोलन होवे।"[16]

इस किताब के छपने के बाद काव्य-भाषा का सवाल एक महत्वपूर्ण सवाल के रूप में उभरा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'खड़ी बोली का पद्य' ऐसी अकेली किताब है जिसकी वजह से सर्वाधिक वाद-विवाद हुआ। इस किताब ने काव्य-भाषा के संबंध में जो विचार प्रस्तावित किया, उसपर लगभग तीन दशकों तक बहस होती रही। इस किताब के जरिए एक साहित्यिक आंदोलन की शुरूआत हुई। हिंदी कविता की भाषा क्या हो--ब्रज भाषा अथवा खड़ीबोली? 'खड़ी बोली का पद्य' ने काव्य-भाषा के तौर पर खड़ी बोली हिंदी का पक्ष लिया। इसके संपादक अयोध्या प्रसाद खत्री ने काव्य-भाषा के तौर पर खड़ी बोली हिन्दी को स्थापित करने के लिए आंदोलन किया।

'खड़ी बोली का पद्य' और अयोध्या प्रसाद खत्री के आंदोलन से पहले खड़ी बोली हिंदी में कविताएं लिखी जाती थी। 'खड़ी बोली का पद्य' में जिन कविताओं को खत्री जी ने शामिल किया है, सारी पहले छप चुकी थीं यह दिलचस्प है कि खड़ी बोली पद्य आंदोलन का जिन लोगों ने प्रखर विरोध किया, इनमें से ज्यादातर लोग इस आंदोलन से पहले खड़ी बोली में कविता लिख चुके थे अथवा खड़ी बोली में कविता लिखने के लिए कवियों को प्रेरित कर रहे थे। यह दीगर बात है कि उक्त सारी खड़ी बोली कविताएं लोक रागों मसलन-लावनी, खयाल, तुर्रा, ठुमरी आदि के रूप में रची

जा रही थी। खत्री जी द्वारा शुरू किए गए आंदोलन से पहले छपी इन खड़ी बोली हिंदी कविताओं का उल्लेख दो वजहों से जरूरी है। एक, खत्री जी ने 'खड़ी बोली का पद्य' में इसका जिक्र नहीं किया है। दूसरा,खड़ी बोली में कविताएं प्रकाशित कर इसके कवियों को अपना समर्थन देने वाले संपादकों ने आंदोलन शुरू होने के बाद इसका प्रखर विरोध किया। शिवराम पंडया नामक एक कवि की कई कविताएं तत्कालीन पत्र 'हिन्दी प्रदीप' में छपी हैं। इनकी 1 अगस्त 1879 ई. को 'नौकरी' शीर्षक कविता छपी है। जिसकी भाषा खड़ी बोली हिन्दी है।

"कहता है हरबशर यहां अब हाय नौकरी।
ढूंढ़े से अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी।।
पहले तो रूपये देकर सबको पढ़ाते थे।
घर घर पै सबके जाकर पढ़ने बुलाते थे।।
कागज कलम किसी को किताबें दिलाते थे।
हर बातेां में लड़के इनआम पाते थे।।
तब तो बड़ी जलूदी से मिलती थी नौकरी।
ढूढ़ें से अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी ॥1॥

लालच रूपये कि देकर सबको पढ़ाया है।
हैवान से सबों को इनसां बनाया है।।
दे दे बढ़ावा यारों सबको पढ़ाया है।
देखा है तेज़ जिसको दरजा चढ़ाया है।
आखिर उन्हीं सबों को मिलती थी नौकरी।।
ढूढ़ें से अब. ॥2॥
गोरे किरानी साहब फिरते हैं मारे मारे।
कौड़ी के तीन-तीन हैं इंगलिश के पढ़ने हारे।।
इस नौकरी के लिए ढूंढे है आफिस सारे।
दै दै के अप्लिकेशन बैठे रहें बेचारे।।
कहते हैं अब तो सब कोई ढोएंगे टोकरी।

ढूढ़ें से अब ॥3॥

पटके हैं सर को नेटेव हा हा मचाते हैं।
नित उठ सलाम करने को बंगले पै जाते हैं।।
रूपया खरच कर अपना डाली चढ़ाते हैं।
तिसपर भी वे बेचारे नहीं पोस्ट पाते हैं।।
घर में उन्हीं के रात दिन रोतीर है डोकरी।।
ढूढ़ें से अब ॥4॥

एफ ए औ बी ए एम ए कालेज के पढ़नेवाले।
पहने हैं कोटबूट औ जेबीघड़ी सम्हाले।।
रंग रंग के रोज रोज वो पट्टे गले में डाले।
फिरते है नौकरी को सर्टीफिकट निकाले।।
उनको भी अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी।
ढूढ़ें से अब ॥5॥

Jamia Millia Islamia University Library

बहुतेरे छैला ऐसे कौड़ी नहीं कमाते।
बनकर के बाबू साहब फूले नहीं समाते।।
हरदम फुलेल पट्टों में और इत्र भी लगाते।
खाकर के पान फिरते सज-धज नई दिखाते।।
उनको भी फिक्र आजकल है हाय नौकरी।।
ढूढ़ें से अब ॥6॥"

TH-12884

'हिन्दी प्रदीप' के आगामी अंक 1 अगस्त 1883 ई. को शिवराम पंडया की लावनी 'गान पारसियों' की धुन पर' और 1 अक्तूबर 1883 को छपे अंक में 'छंद पारसियों की ध्वनि का' खड़ी बोली हिंदी में रची कविता छपी है। इससे जाहिर होता है कि बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप' में इन कविताओं को छापकार काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी की प्रस्तावना कर रहे थे। इतना ही नहीं इससे कई कदम आगे बढ़कर प्रतापनारायण मिश्र खड़ी बोली हिंदी में कविता रच रहे थे। 15 जून 1884

के 'ब्राह्मण' में खड़ी बोली हिंदी में लिखी इनकी कविता ''चाहो गाना समझो चाहो रोना समझो'' छपी है।

''चाहो गाना समझो चाहो रोना समझो।
अब तो तुम्हारे बिना प्रभो! नहिं और कोई सहाय है।
सब भांति भारत देश हा! असमर्थ है अनुपाय है।।
द्विज वृंद अक्षर हीन हैं महिपाल पर बश दी हैं।
हत द्रव्य वैश्य मलीन हैं व्यय है परंतु न आय है।।
धन सब प्रकार से हम को दो चरण प्रहार सहा करो।
निज भाषा तक को भी बैटा दो यह राजवंश का न्याय है।।
बिधवा विपत्ति में रोती है गऊ प्राण दुःख से खोती है।
जनता हत प्रभु होती है, नहिं इसका का कोई उपाय है।।
धनवान मत प्रसाद में पड़े लोग वाद बिबाद में।
पड़े रोबै देश विषाद में सुनता नहीं कोई हाय है।।
पहिचानते नहिं स्वप्न को रहे खो सब अपने महत्त्व को।
बिन जाने प्रेम के तत्व को सर्वस्व नष्टप्राय है।।
जो बिचार कीजेगा पाप का जो नहीं ठिकाना प्रताप का।
यह समझिए आश्रित आप का बहा शोक सिंधु में जाय है॥2॥

बिबादी बढ़े हैं यहां कैसे 2॥'
'कलम देखिए म्लेक्ष सेना के हाथों।
'मिट ( ) नामियों के निशां कैसे 2॥'
बने पढ़ के गौरंड भाषा द्विजाती।
'मुरीदाने पीरे मुगां कैसे2॥'
बसो मूखर्ते। देवि। आर्यो के जीमें।
'तु हमारे लिए हैं मकां कैसे 2॥'
अनद्योग आलस्य संतोष सेवा।
'हमारे भी हैं मिहरवां कैसे 2॥'

न आई दया दुष्ट गो भक्षियों को
'तड़पते रहे नीमजां कैसे 2॥'
बिधाता ने यां मक्खियां मारने को।
'बनाए हैं खुशरू जवां कैसे 2॥'
अभी देखिये क्या दशा देश की हो।
'बदलता है रंग आसमां कैसे 2॥'
है निर्गंध इस भारती बाटिका के।
'गुलों लाल : ओ अरगवां कैसे 2॥'
हमें बुह सुखद हाय भूला है जिसने।
'तवाना किये तातबां कैसे 2'॥
प्रताप अपनी होटल में निर्जज्जता के।
'मजे लूटती है जबां कैसे 2' ॥3॥

इस कविता के साथ प्रतापनारायण मिश्र ने नागरी में कविता रचने की अपील की है। ''आयर्य कवियों से हम सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि नागरी भाषा की कविता का भी ढंग डालें। जिस भाषा के लिए इतनी हाय करते हैं उसमें कविता की चाल न हो प्रिय वर्ग हमें सहायता दो।'' प्रतापनायण मिश्र की अपील में ही वे बुनियादी कारण मौजूद हैं, जिसकी वजह से वे बाद में खत्री जी के 'खड़ी बोली का पद्य' आंदोलन के विरोधी हो गए। मिश्र जी ने अपील में जिसे नागरी भाषा कहा है, वह खड़ी बोली हिंदी ही है। लेकिन इस अपील में एक बात महत्वपूर्ण है। यह अपील सिर्फ 'आयूर्य कवियों' से की गई है। दरअसल, हंटर कमीशन में सैकड़ों मेमोरियल देने के बावजूद हिंदी के पक्ष में निर्णय न होने के कारण प्रतापनारायण मिश्र सरीखे हिंदी-आंदोलनकारी क्षुब्ध थे। इसी दौर में भाषा की धार्मिक पहचान गढ़ी गई। पश्चिमोत्तर प्रांत के विद्वानों के लिए अब हिंदी भाषा हिंदुओं की भाषा हो गई। इसी का नतीजा है कि प्रताप नारायण मिश्र सिर्फ 'आयूर्य कवियों' से 'सानुरोध प्रार्थना' करते हैं। मिश्र जी की इस अपील में हंटर कमीशन के दौर में हुए गहमागहमी की छाया स्पष्ट रूप से दिखती है। अपील में इन्होंने कहा है कि 'जिस भाषा के लिए

इतनी हाय करते हैं'। हंटर कमीशन के दौर में फारसी लिपि (उर्दू) को हटाकर नागरी लिपि (हिंदी) को लागू करने के लिए हिंदी आंदोलनकारियों ने काफी 'हाय' मचाया था।

प्रतापनारायण मिश्र के इस 'सानुरोध प्रार्थना' से पहले चंपारण (अब पश्चिमी चंपारण) के एक गांव रतनमाल, बगहां के पंडित चंद्रशेखरधर मिश्र की 1883 (माह पता नहीं) 'पीयूष प्रवाह' मासिक में एक कविता छपी। इस कविता में चंद्रशेखरधर मिश्र ने खड़ी बोली हिंदी में पद्य रचने की वकालत की है।

> "गद्य की भाषा विशुद्ध विराजित पद्य की भाषा वही मथुरा की।
> आधी रहे मुरगी की छटा फिर आधी बटेर की राजै छटा की।।
> ऐसी कड़ी द्विविधा में पड़ी-पड़ी यों गिड़ी कविता छवि बांकी।
> हिन्दी विशुद्ध में गद्य सुपद्य कै उन्नति कीजिए यों कविता की।।[17]

प्रतापनारायण मिश्र से चंद्रशेखरधर मिश्र की अपील में फ़र्क है। प्रताप नारायण मिश्र ने खड़ी बोली हिंदी में कविता रचने के लिए सिर्फ 'आर्यूर्य कवियों से सानुरोध प्रार्थना' किया है जबकि चंद्रशेखरधर मिश्र ने ऐसा नहीं किया है। एक बात काबिलेगौर है कि चन्द्रशेखरधर मिश्र की इस छोटी कविता में उर्दू-फारसी का एक शब्द भी नहीं आ पाया है। क्या यह महज संयोग है? अथवा लल्लूलाल की तरह जानबूझ कर हटाया गया है। ऐसी स्थिति में चंद्रशेखरधर मिश्र 'हिंदी विशुद्ध में गद्य सुपद्य कै उन्नति कीजिए यों कविता की' में किस हिंदी में पद्य-रचना कराना चाहते थे, इसका सहज पता चलता है। चंद्रशेखरधर मिश्र की इसी सोच का नतीजा है कि सोहन प्रसाद मुदर्रिस के मामले में हिंदी भाषा को हिंदू धर्म से रिश्ता जोड़नेवालों के साथ बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया।[18] इस प्रकार, शुरूआत में प्रतापनारायण मिश्र और चंद्रशेखरधर मिश्र की काव्य-भाषा संबंधी चिंता समान है। दोनों की भाषा एक जैसी है। फर्क है तो सिर्फ पाठक में, जिसको लक्ष्यकर दोनों अपील कर रहे थे।

प्रतापनारायण मिश्र के साथ 'खड़ी बोली का पद्य' आंदोलन के दूसरे मुखर विरोधी राधाचरण गोस्वामी की कविता 'अमेरिका वालों से सम्मिलन' 1 सितंबर

1879 के 'हिंदी प्रदीप' में छपी। थियोसोफिकल सोसायटी का एक सम्मेलन बंबई (अब मुंबई) में 1879 ई. में हुआ था। इस सम्मेलन में थियोसोफिकल के अमेरिकी प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। यह कविता उन्हीं लोगों पर केंद्रित है।

"आओ! आओ! बंधुगन! मिलिये भुजा पसार।
बिछुरे केते दिनन के समय न बारम्बार।।"

इस कविता में ब्रजभाषा का पुट है लेकिन खड़ी बोली हिंदी के लिए छूट भी है। राधाचरण गोस्वामी ने आगे भी खड़ी बोली हिंदी में कविताएं लिखी। डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु ने जिक्र किया है कि राधारचरण गोस्वामी की 'भारतेंदु' (20 जून 1883 ई.) में 'श्रीमती भारतेश्वरी का हिंदी में कल्याण गान' शीर्षक कविता खड़ी बोली हिन्दी में छपी है।[19] 'भारतेंदु' (19 सितंबर 1883 ई.) में गोस्वामी जी का एक नाटक 'भंग तरंग' छपा है। इस नाटक का एक पात्र छूछू चौबे उस्ताद खड़ी बोली हिंदी में कहता है--

"टांगे लथरा लई चमड़ी पे बड़े दाग हुए।
बालहल हलके सुआपालक कैसे साग हुए।
गिर पड़े फल जो खिजूरी की तरह सूख-सूख
पिच गए गाल बबूले की तरह दूख-दूख।"[20]

'भारतेंदु' में राधाचरण गोस्वामी की खड़ी बोली में लिखी कई कविताएं छपी। 'भारतेंदु' (16 अक्तूबर 1883 इं.) में इनकी 'बड़ी तातील' शीर्षक कविता छपी।

"कहें क्या मुसीबत बड़ी आई हम पर
लुढ़कते चले आते ग़म आह ग़म पर ॥1॥
कहो किस तरह माहदो ये कटेंगे
मीयां बीबी रोजा करेंगें लड़ेंगे ॥2॥
बुरा होवे बंगालियों का खुदाया
कि तातील का हुक्म जारी कराया ॥3॥

जहां में हुआ एकदम सुनसान।
अहलकार लोगों के उतरे गुमान ॥4॥
अब आवेंगे अहमक दिहाती कहाँ से
कमायेंगे रोटी कहो हम कहाँ से ॥5॥
करेंगे नहीं साह जी अर्ज़ी नालिश।
मिलेगा नहीं मेहनताना नबालिश ॥6॥
टिकट की इजादी भी मारी गई।
मुहर्रिर के हक की भी स्वारी भइ ॥7॥
नक़ल की शकल देखने को कहां।
क़सम की जगह मारते मक्खियां ॥8॥
चहारम उधारम सुधारम चलाते।
तकाज़ के ऊपर तकाज़े दबाते ॥9॥
रूपा बात कहने का लेते थे हम।
कि डिस्मिस् पै देते अपीलों का दम ॥10॥
करा इजरा डिग्री और कुर्की कराई।
गिरिफ़्तारी नीलाम की धत झुकाई ॥11॥
किसी का शैदाबा कोई वाज़ दावा।
ग़रज़ सब तरह था हमारा बनावा ॥12॥
न थी बात कहने की मुहलत हमें।
रही आती थी घेरे गफलत हमें ॥13॥
बुला लेते थे हाकिम हमें बारबार।

मुवक्किल हुए जाते थे जार-जार ॥14॥

इकट और नाजीरों का वो ढ़ेर था।

गोया एक शैतान का फेर था ॥15॥

वो चलती हुई चर्व बातें लतीफ।

वह समें थी इंजिन ज़वाने शरीफ ॥16॥

बुरा होवे तातिल के नाम का।

न रक्ख हमें अब किसी काम का ॥17॥

खुदा जल्द आमें कचहरा के योम।

वनें दौलते मुफूत से दोम सोम ॥18॥

इलाही अदालत को रक्खे अबाद।

जहां हम निकम्मों को मिलती मुराद ॥19॥

कचहरी भवानी कचहरी तू चेत।

किसी मालवर को चबा बीच खेत ॥20॥

अंखा का अंधा गांठ का पूरा।

कोई आजाय मेरे पंदे में ॥21॥''[21]

राधचरण गोस्वामी ने अनेक लावनियां लिखी है। उनमें से कुछ की भाषा खड़ी बोली हिंदी है। यहां उनकी लावनी का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। 'भारतेंदु' सितंबर, अक्तूबर और नवंबर 1884 ई. का अंक संयुक्तांक छपा था। इस अंक में राधाचरण गोस्वामी रचित 'गजल चहारूम--हिन्दी जार-जार रोती' छपी है। इसकी भाषा खड़ी बोली है।

''हिन्दुओं में मेरा कोई भी मददगार नहीं।

जिंदगी ख्वार है दिल को जरा करार नहीं ॥1॥

उर्दू करती है अदालत में हजारों ग़ल्ती।
तो भी घटता वहां उस्का ज़रा इतवार नहीं ॥2॥
जुल्म करती है हर रोज सरासर अफसोस।
सज़ा देती उसे ताहम कभी सरकार नहीं ॥3॥
हैफ़ सदहैफ़ किसी ने न खबर ली मेरी।
सुनी सरकार ने मुतलक मेरी पुकार नहीं ॥4॥
मेरी फ़र्याद वहां तक अगर्चि पहुंची भी।
ख़ौफ़ से उर्दू के हुए मेरे हज़हार नहीं ॥5॥
जहां में जल रहा है उर्दू का जल्वा ऐसा।
उस्के दोस्तों का ज़मीं पर कहीं शुमार नहीं ॥6॥
कहां जाकर के रहूं हाय इलाही अब मैं।
कहीं पर हिंद में मेरा रहा घर बार नहीं ॥7॥"[22]

सन् 1813 ई. में विल्वर फोर्स एक्ट पास होने के बाद ईसाई मिशनरियों को अपने धर्म-प्रचार की छूट मिली। धर्म-प्रचार के लिए इन लोगों ने यहां की स्थानीय भाषा में धार्मिक साहित्य का अनुवाद छापकर बांटना शुरू किया। इनके धर्म-प्रचार का लक्ष्य निम्न तबके की जनता थी। इस तबके तक अपनी बात पहुंचाने के लिए इनलोगों ने अपना साहित्य तुक में (लावनी, कजरी जैसे लोकराग) बनाना शुरू किया। इस तरह के पद्य आम जनता आसानी से समझ लेती थी। जनता को ऐसे पद्य याद भी हो जाते थे। ऐसे में, पद्य-रचना धर्म-प्रचार में कारगर सिद्ध भी होने लगी। ईसाई मिशनरियों के इन कार्यों को देखते हुए आर्य समाजी प्रचारकों ने भी ऐसा करना शुरू किया। आम जनता तक अपनी बात पहुंचाने के लिए खड़ी बोली का प्रयोग करना स्वाभाविक था। यह दीगर बात है कि इन रचनाओं का काव्य-मूल्य न के बराबर था। बावजूद इसके कविता की भाषा के तौर पर खड़ी बोली हिंदी के

लिए ज़मीन तैयार हो रही थी। आर्य समाजी प्रचारकों की ऐसी पद्य-रचना के बारे में 5 मई 1884 ई. को 'भारत जीवन' के संपादक रामकृष्ण वर्मा ने टिप्पणी लिखी। "आप जो कुछ लिखें कृपाकर गद्य में ही लिखें आर्य समाजी कवियों की नांई पद्य में लिखकर रही सही कविता की क्यों मिट्टी खराब करते हैं।.....आपकी लिखी कविता को देखकर आप ही सरीखें एक प्राचीन कवि की कविता याद आ गई जिसे आपके आनंदार्थ प्रकाशित करते हैं।।"

"कोऊ एक पापी हरिनाम न जापी गङ्ग की दरस नांहिं
तुलसा को परम नांह मग्गह में मर गयो। गङ्ग जी की बालू
बरबस ले उड़ी बयारें, जाके स्पस वे कोटान कोट पाप तर गयो।।
चढ़ चले बिमान मुख सुंदरी खिलावें पान गुण के निधान सों बिवान चढ़े जाते हैं।।"

कहने की ज़रूरत नहीं कि रामकृष्ण वर्मा ने आर्य समाजी कवियों की कविता की आलोचना करने के लिए कब की लिखी और किसकी कविता को उद्धृत किया है? नतीजतन नंदकिशोर नामक एक आर्य समाजी कार्यकर्ता ने बिगड़कर संपादक को पत्र लिखा। फिर संपादक ने अपने मत की पुष्टि के लिए 'भारत जीवन' (19 जून 1884) में बिलासपुर आर्यसमाज के मंत्री जगन्नाथ प्रसाद रचित 'भारत वाक्य' को उद्धृत किया--

"1. कुरानी पुरानी और बड़े-बड़े ज्ञानी देखे जैनी और किरानी सहसन मतबादी को।

2. सी यस आई बड़े-बड़े एम ए बी ए अगणित हिंदी के सितारे भारी भारी व्याख्यानी को।

3. कोट पतलून सज चुरट दबाय मुंह देश के हितैषी बने स्वारथ साधन को।

4. भारत बिचरि कहैं सवन में छानि देखों देश के हितैषी एक स्वामी दयानंद को।"

इस 'भारत वाक्य' के नीचे संपादक ने लिखा है "वाह! वाह! क्या तुक मिलाया है 'मतवादी को और दयानंद को' हम प्रकाशक महाशय से निवेदन करते हैं कि यह कौन-सा छंद है लिख देवें। ऐसी कविताओं के नीचे अपना नाम प्रकाश करना हमारे जान तो अत्यंत लज्जा का विषय है; विनय पूर्वक निवेदन करते हैं कि ये महाशय कविता की मिट्टी खराबी न करें हां यदि यों ही शौक है तो कुछ दिन अभ्यास करके सीखें फिर निस्संदेह कविता करें।।" 'भारत जीवन' के संपादक रामकृष्ण वर्मा ने 'भारत मित्र' में छपी शिवराम पंडया की निम्नलिखित लावनी को उदाहरण के तौर पर छापते हुए कहा कि 'इसे कविता कहते हैं।'

"हण्टर ने जो हिन्दी को हण्टर मारा।
बस टूट गया दिल टुकड़े हुआ हमारा।।
क्या करें हाय इस दुःख के मरे रोवें।
आसुवों से हरदम मुह को अपने धोवें।।
नहीं चैन पड़े दिन रैन न सुख से सोवें।
सब बिसर गया निज खान जी खोवें।
हिन्दी को नही क्या देगा कोई सहारा।
बस टूट गया दिल टुकड़े हुआ हमारा ।1।
यह राजा बाबू साहूकार कहलावें।
नहीं दया चित्त में नेक न इसपर लावें।।
गिरजों के फंड में लाखों हया दिलावें।
या रंड मुडि भडुओं को खूब खिलावें।।
नहीं जाने इन्होंने दिल में क्या है बिचारा।।
बस टूट गया....2।।

हम हाथ जोड़कर कहैं जस सुन लीजे।
जो होवे तुमसे यथाशक्ति दे दीजे।।
इस बहती गङ्गा में तो हाथ धो लीजे।
नहीं आवैगा फिर समय देर क्यों कीजे।।

हिंदी को उबारो होगा नाम तुम्हारा।
बस टूट गया दिल.....3।।

हिंदी के लिए हम तनमन अरपन वारें।
नहीं किसी भांति से हिम्मत भी हम हारें।।
फिटकार है उनपर जो दुर्दशा निहारें।
नहीं करते इसमें मदत उन्हें धिक्कारें।।
शिवराम विनय करता है दास तुम्हारा।
बस टूट गया दिल टुकड़े हुआ हमारा।4।।"

'भारत-जीवन' के संपादक रामकृष्ण वर्मा भारतेंदु हरिश्चन्द्र के अच्छे मित्र और 'भारतेंदु-मंडल' के सक्रिय सदस्य थे। इनकी भाषा-संबंधी नीति भारतेंदु से मिलती-जुलती थी। उर्दू के खिलाफ हिंदी की रचनाएं 'भारत-जीवन' में खूब छपती थी। भारतेंदु की तरह इनका भी स्वामी दयानंद सरस्वती और आर्य समाज से विरोा था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने तो अपनी एक लावनी में लिखा कि "क्या तो गदहा को चना चढ़ावे की होई दयानंद जाय हो दुई रंगी"। भारतेंदु-मंडल के साहित्यकारों को आर्य समाज की गतिविधियाँ पसंद नहीं थी। भारतेंदु-मंडल के साहित्यकार आर्य समाज की आलोचना बढ़ा-चढ़ा कर करते थे। जिस प्रकार तत्कालीन साहित्यकार आर्य समाज की समाज-सुधार की चेतना को नहीं समझ पा रहे थे, उसी प्रकार धर्म-प्रचार के उद्देश्य से खड़ी बोली हिंदी में बनाए तुकबंदी के महत्व को भी नहीं समझ रहे थे। यह सच है कि इन तुकबंदियों का खास काव्य-मूल्य नहीं था लेकिन इससे जनता में खड़ी बोली हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा था। साथ ही काव्य-भाषा के तौर पर खड़ी बोली हिंदी के लिए जमीन तैयार हो रही थी। दरअसल इनलोगों का मुख्य लक्ष्य अपने विचारों का प्रचार-प्रसार था। खड़ी बोली हिंदी में तुकबंदी की कोशिश इनके विचारों के प्रचार-प्रसार का जरिया-मात्र थी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के 'जातीय संगीत' शीर्षक आलेख में यही चेतना दिखती है। 'जातीय संगीत' के जरिए अपने विचारों को फैलाने के लिए भारतेंदु ने मई 1879 ई. में लिखा कि "भारतवर्ष की

उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गांव-गांव में, साधारण लोगों में प्रचार की जायँ। यह सबलोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदैशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।"[24]

जातीय संगीत के जरिए जनसाधारण तक पहुंचने की कोशिश में जातीय संगीत का विकास हुआ। वैसे ही खड़ी बोली हिंदी में तुकबंदी के जरिए काव्य-भाषा के तौर पर खड़ी बोली हिंदी के लिए उपयुक्त जमीन तैयार हुई। भले ही तुकबंदी त्रुटीपूर्ण थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मुताबिक हिंदी की तीन छंद प्रणालियां उस समय लोगों के सामने थी--हिंदी के कवित्त सवैया की प्रणाली, उर्दू छंदों की प्रणाली और लावनी का ढंग। भारतेंदु-मंडल के रचनाकार इन तीनों में रचनाएं करते थे। 'खड़ी बोली का पद्य' के प्रकाशन के बाद छंद का सवाल भी उठाया गया। साथ ही यह बताने की कोशिश हुई कि इन छंदों के अलावा दूसरे छंद में, खड़ी बोली में कविता संभव नहीं है। दरअसल छंद का सवाल तो गौण मुद्दा था। मुख्य मकसद खड़ी बोली हिंदी कविता को उर्दू-फारसी परंपरा से बचाना था।

'खड़ी बोली का पद्य' के छपने के बाद पक्ष-विपक्ष द्वारा जिन तर्कों का उपायोग किया गया, उसके जरिए उन्नीसवीं सदी की साहित्यिक राजनीति को समझा जा सकता है। इस राजनीति का बारीकी से विश्लेषण करने पर उन्नीसवीं सदी के प्रगतिशील (?) नायकों का व्यक्तित्व कई मुद्दों पर कमजोर दिखता है। अपनी साहित्यिक विरासत को जानने-समझने के लिए 'खड़ी बोली का पद्य' आंदोलन के बाद हुए जिरह को विस्तार पूर्वक देखना जरूरी है। गौरतलब है कि इस आंदोलन का

समर्थन कम लोगों ने किया। तत्कालीन ज्यादातर बड़े साहित्यकारों ने इसका विरोध किया अथवा ढुलमुल रवैया अख्तियार किया।

1 सितंबर 1887 ई. को 'बिहार बंधु' 'चिट्ठी-पत्री' स्तंभ में 'खड़ी बोली का पद्य' के विरोध में एक खत छपा है। इसमें खत लिखने वाले का नाम नहीं छपा है। उसकी जगह 'एक हिंदी भाषा हितैषी, मुंगेर' लिखा है। भारतीय अखबार में 'खड़ी बोली का पद्य' के विरोध में यह पहली छपी आलोचना है। इसमें कहा गया है कि "हमने जहाँ तक आपकी खड़ी बोली के पद्य को देखा यथार्थ में उसको बेलगाम का घोड़ा पाया। हम देखते हैं कि खड़ी बोली का क्या ही अच्छा अभिप्राय है कि हमारे देश के जितने मूर्ख लेखक और अन्य देशीय लोग आकर जहः तक हमारी बोली को बिगाड़ें वह खड़ी बोली के मुंशी स्टाइल, पंडित स्टाइल, मौलवी स्टाइल, यूरेशियन स्टाइल और यूरोपियन स्टाइल समझे जायें।.....खड़ी बोली यथार्थ में इसकी उपयुक्ति (उपयुक्त) नहीं कि उसकी उन्नति की जाये और उसमें आर्य जाति के चलन, व्यवहार, धर्म, ज्ञान, और पवित्र भाव इत्यादि भली-भांति रचे जांये और सब प्रकार की राग-रागिनी आ सकें जिसमें यह देश सबसे बढ़ा हुआ है।....खड़ी बोली के पद्य को पढ़कर यह बोध होता है कि कवि और चित्रकार होना अब बहुत सहज हो गया है। कविताई तो लड़कों के तुक बांधने में पूरी हो जाती है और चित्रकारी कितनी ही टेढ़ी लकीरें एक जगह खींचने पर शेष हो जाती हैं.....अब बिना विशेष कष्ट उठाए जो कुछ बेसिर और पाँव की अनगढ़ छवि हाथ से खिंच जाये वह नवीन चित्रकारी कहलाती है और नवीन कविताई तो वह है जो कुछ मुँह से अंगरेजी, फारसी, अरबी, तुर्की, इब्रानी, और पुर्तगाली के शब्द निकले तुरंत उनकी तुक बंध जाती है और साहित्य में झट उनके विभाग अंगरेजी स्टाइल, फारसी स्टाइल, अरबी स्टाइल, तुर्की स्टाइल, इब्रानी स्टाइल और पुर्तगाली स्टाइल के नाम से ठहरा लिये जाते हैं।.....खड़ी बोली वाले वृथा अपने सिर को दुखाते इस यत्न में अपने देश का कोई भी उपकार नहीं हो सकता।"

अयोध्या प्रसाद खत्री आलोचना से बेपरवाह अपनी किताब साहित्य से जुड़े लोगों को निःशुल्क भेजकर उनकी राय मांगते थे। ऐसे ही डॉ. ग्रियर्सन को किताब

भेजी और इस बाबत उनकी राय जनना चाहा। 6 सितंबर 1887 ई. को डॉ. ग्रियर्सन ने खत्री जी के नाम एक खत लिखकर भेजा।

"I have recieved your Khari Boli Ka Padya and your letter asking for an opinon of it, I regret no criticism of mine can be of use to you, as I am strongly of opinion that all attempts at writing poetry in Khari Boli must be unsuccessful. The matter was fully discussed some years ago by Babu Harischandra of Benaras and I consider his arguments-convincing."

'बिहार बंधु' में किसी ने छद्म नाम से 'खड़ी बोली का पद्य' की तीखी आलोचना की। डॉ. ग्रियर्सन ने पत्र लिखकर खड़ी बोली कविता रचने की सभी कोशिश को असफल करार दिया। बावजूद इसके खत्री जी अपनी किताब सबको भेजते रहे। अपने विचार से अवगत कराते रहे। यहाँ सवाल उठता है कि क्या 'बिहार बंधु' के संपादक ने खुद छद्म नाम से 'खड़ी बोली का पद्य' के विरोध में लिखा था। 'बिहार बंधु' की काव्य-भाषा-नीति से पता चलता है कि ऐसा संपादक ने नहीं लिखा था। 'बिहार बंधु' शुरू से खड़ी बोली कविता के लिए चिंता व्यक्त करता था। 'खड़ी बोली का पद्य' छपने के पहले डमी कॉपी के आधार पर संपादक ने तारीफ करते हुए इसे जरूरी बताया था। 23 जून 1887 ई. को 'बिहार बंधु' के 'प्रप्ति स्वीकार' स्तंभ में 'खड़ी बोली का पद्य' के बारे में एक छोटी टिप्पणी छपी है। 'खड़ी बोली का पद्य'-पहिला भाग, इसे मुज़फ़्फ़रपुर निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने संग्रह किया है। इसमें तीन परिच्छेद हैं। पहले में ठेठ हिंदी के, दूसरे मुंशियों की रीति के और तीसरे में पंडितों की रीति के पद्य हैं। यह पुस्तक नए ढंग पर बनी है, पद्य भी अच्छे संग्रह किऐ गये हैं।" यह काबिलेगौर है कि बिहार बंधु शुरू से खड़ी बोली में पद्य रचना की सिफारिश करता था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने कई होली के पदों की रचना की थी। 'मधु मुकुल' नाम से इन पदों का एक संग्रह छपा। 17 मार्च 1881 ई. को 'बिहार बंधु' में 'मधु मुकुल' की छपी समीक्षा से इस अखबार की पद्य-नीति का खुलासा होता है। "बाबू साहब ने अच्छी-अच्छी होलियां सब ब्रज की भाषा में कही

है। हिंदी की खड़ी बोलचाल में एक भी नहीं, और एक (ग़ज़ल) कही भी है तो वह अच्छी नहीं है।'' इससे पता चलता है कि खड़ी बोली में पद्य रचना के लिए अखबार चिंतित था। साथ ही, उर्दू की ग़ज़ल को खड़ी बोली हिंदी की रचना मानता था। मतलब कि 'बिहार बंधु' तत्कालीन कई साहित्यकारों की तरह, खड़ी बोली हिंदी-उर्दू में भेद नहीं करता था। 'बिहार बंधु' ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र के जिस ग़ज़ल का जिक्र करते हुए अच्छा नहीं माना है, वह ''गले मुझको लगा लो ऐ मेरे दिलदार होली में। बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ये यार होली में।.....'रसा' गर जामे मैं गैरों को देते हो तो मुझको भी नशीली आंख दिखाकर करो सरशार होली में'' है। इतना ही नहीं 'खड़ीबोली का पद्य' पहिला भाग छपने के बाद 8 सितंबर 1887 ई. को 'बिहार बंधु' ने खत्री जी के मकसद की तारीफ की। 'बिहार बुंध' ने लिखा कि ''हमारी भी अत्यंत अभिलाषा है कि हिंदी पद्य की भाषा शीघ्र सुधारी जाये, क्योंकि इसके बहुरूपी होने के कारण कवितायों का मन डगमग रहता है। पद्य लिखने की शर्धा (श्रद्धा) नहीं होती। उचित है कि काव्य के रसिक लोग इस पुस्तक को मंगाकर एक बार अवलोकन करें। सरकारी पाठशालाओं में आजकल जिस प्रकार की पढ़ाई होती है। उसके लिए तो अत्यंत सुयोग है।''

राधारचरण गोस्वामी भारतेंदु मंडल के सक्रिय सदस्य थे। इन्होंने 'खड़ी बोली का पद्य' के विरोध में 11 नवंबर सन् 1887 ई. को 'हिन्दोस्थान' में 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक लेख लिखा। गोस्वामी जी ने इसे 'अयोध्या प्रसाद लिखित' लिखा है, जबकि 'खड़ी बोली का पद्य' में अयोध्या प्रसाद खत्री की लिखी छोटी भूमिका है। इसमें खत्री जी की रची एक भी कविता नहीं है। खत्री जी ने इसका संकलन-संपादन किया था। इस लेख में राधाचरण गोस्वामी ने लिखा है ''आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आंदोलन आरंभ किया है कि जैसी हिंदी में गद्य लिखा जाता है, वैसी हिंदी में पद्य भी लिखा जाया करे। वास्तव में भाषा के दो ही स्वरूप हैं, गद्य और पद्य। जबकि हिंदी गद्य की इतनी उन्नति हुई है तब हिंदी पद्य की भी उतनी उन्नति नहीं तो कुछ तो होनी चाहिए। इस मत के पोषण करनेवालों से हमारी एक प्रार्थना है, वह यह है कि हमारी वर्तमान हिंदी जो है वह ब्रजभाषा, कान्यकुब्जी, शौरसेनी,

वैसवाड़ी, बिहारी अंतर्वेदी, बुंदेलखण्डी आदि कई भाषाओं के शब्दों से बनी हैं थोड़े दिन पहले हिंदी का कोई विशुद्ध रूप न था, अब इसको एक स्वतंत्र भाषा भी कह सकते हैं, पर वस्तुतः ब्रजभाषा आदि से इसका भेद नहीं अब इस प्रकार की भाषा में छंद रचना करने में कई आपत्ति हैं। प्रथम तो भाषा के कवित्त, सवैया आदि छंदों में ऐसी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता और यदि किया भी जाता है तो बहुत भद्दा मालूम होता है। तब भाषा के प्रसिद्ध छंद जोड़कर उर्दू के बैत, शेर, गजल आदि का अनुकरण करना पड़ता है, पर फारसी शब्दों के होने से उसमें भी साहित्य नहीं आता। फिर जब काव्य में हृदयग्राही गुण नहीं हुआ तो ऐसे काव्य की रचना ही व्यर्थ है। दूसरा यह कि चंद के समय से बाबू हरिश्चन्द्र तक जो कविता हुई है वह सब ब्रजभाषा में हुई और सब पण्डितों ने संस्कृत के अनन्तर 'भाषा' शब्द से इसी का व्यवहार किया। इससे साहित्य की जैसी उन्नति है, संस्कृत के बिना किसी भाषा के साहित्य की उतनी उन्नति नहीं और सिवाय क्रियापदों के हिंदी से इसका भेद भी नहीं। तब इतने बड़े अमूल्य रत्न भंडार को छोड़कर नये कंकर-पत्थर चुनना हिंदी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं, वरंच इस ब्रजभाषा के भंडार को हिन्दी से निकाल देने से फिर हिंदी में क्या गौरव की सामग्री रह जायगी? पृथ्वीराज रायसा, सूरसागर, तुलसीकृत रामायण, बिहारी सतसई, पद्याकर, देव, आनंदवधन की अमृतमयी कविता को तिलांजलि दे दीजिये, फिर क्या हजार वर्ष में भी इतनी हिंदी कविता आप इकट्ठी कर सकेंगे? तीसरा-हमारी कविता की भाषा अभी मरी नहीं है, जीती है, तब फिर इसमें क्यों न कविता की जाय? चौथा-संस्कृत नाटकों में साहित्य के लालित्य के लिये संस्कृत, प्राकृत, पैशाची कई भाषा व्यवहार की गई है, तो यदि हम हिंदी-साहित्य में दो भाषा व्यवहार करें तो क्या चोरी है? पांचवा-इस समय में हमारे परम आतुर आर्य समाजी और मिशनरी आदिकों ने भाषा-साहित्य की रीति और अलंकार आदि बिना जाने, कविता लिखने का आरंभ करके अपने हास्य के सिवाय, काव्य की भी उलटे छुरे से खूब हजामत की है और इस पिशाची कविता से अपने समाज का भी खूब मुख नीचा किया है। बस यह खड़ी बोली की कविता भी पिशाची नहीं तो डाकिनी अवश्य कवि समाज में मानी जायगी। इत्यादि कई कारणो से हम खड़ी बोली पद्य के

विरोधी हैं। हमारे ग्रंथकार महाशय ने जो इसके उदाहरण में कविता दी है, वह सर्वांश में विशुद्ध नहीं है, जिससे वह आदर्श के योग्य नहीं हो सकती। हाँ यदि गद्य और कविता की हिंदी में कुछ अंतर है तो इतना ही कि एक प्राचीन भाषा और एक नवीन भाषा इस दो तरह की भाषा परिपाटी रहने से हिंदी का गौरव है, लाघव नहीं। ऐसी कविता के प्रयासी यदि भाषा के झगड़े में न पड़ करके एक काम करें तो उत्तम हो। हमारी भाषा में जो कविता है वह सब पुराने ढंग की है। हमारे नवीन कविता प्रिय नवीन समय के अनुकूल, नवीन-नवीन भावों को लेकर, नवीन-नवीन विषयों पर कविता करें और यूरोप के विशद साहित्य का भाषा में अवतरण करें तो परम उपकार हो।"[26]

राधाचरण गोस्वामी के इन आरोपों का खंडन श्रीधर पाठक ने किया। इन्होंने 20 दिसंबर 1887 को 'हिंदोस्थान' में 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक लेख लिखा। इस लेख में पाठक जी ने राधाचरण गोस्वामी सरीखे विद्वान द्वारा 'दुर्वाक्य और असंगत, असभ्य वचनों का बर्ताव' किए जाने पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा-"यह आवश्यक नहीं है कि जिन छंदों में ब्रज भाषा की कविता की जाती है वे ही पद्य (छंद होना चाहिए) 'खड़ी बोली का पद्य' में काम में लाये जायँ--घनाक्षरी, सवैया इत्यादि अनेकों (अनेक) छंद ऐसे हैं कि जिनमें खड़ी कविता बड़ी कठिनाई और बड़ी सुघराई के साथ आ सकती है। फिर गोस्वामी जी ने कैसे निश्चय किया कि कवित्त इत्यादि में खड़ी बोली व्यवहृत नहीं हो सकती? कभी खड़ी बोली में कवित्त लिखने पर श्रम भी किया है? यदि आवश्यकता समझी जायगी, प्रायः प्रत्येक छंद इस भाषा में दिखला दिया जायगा।"

गोस्वामी जी के अनुसार चंद से हरिश्चन्द्र तक हिंदी की सब कविता ब्रजभाषा में यदि हुई है तो यह किसलिये आवश्यक है कि इससे आगे भी अब सब कविता उसी बोली में होवे? हमारा मत है कि दोनों में हो, ब्रजभाषा में भी और खड़ी साधु भाषा में भी -वरंच खड़ी बोली में कई कारणों से कविता की विशेष आवश्यकता है। सबसे प्रबल कारण उस हिन्दी के समझने वाले जिसे कि ब्रज भाषा कहते है अधिकतर भारतवर्ष के उन्हीं प्रांतों में हैं जहां के कुछ -कुछ शब्द प्रचलित पद्य-भाषा

में बर्ताव में आते हैं। वह प्रांतिक शब्द समाज गोस्वामी जी ही के अनुसार यह है--

1. ठेठ ब्रज की बोली
2. कान्यकुब्जी -कन्नौज प्रांत की बोली
3. शौरसेनी-यह ब्रज की ठेठ बोली ही का नाम प्रतीत होता है। शौरसेनी शायद शूर सेन के राज्य का नाम था जो किसी समय में मथुरा का राजा था।
4. बँसवाड़ी-अवध के आग्नेय और दक्षिण भाग की बोली?
5. बिहारी - मगध की भाषा
6. अंतर्वेदी -गंगा यमुना के बीच की
7. बुंदेलखंडी-

और इन प्रांतिक बोलियों के साथ फारसी, अरबी, तुर्की के शब्दों का सम्पर्क है, यह भी न भूलना चाहिए।''[27]

श्रीधर पाठक ने राधाचरण गोस्वामी के मत का खंडन करने के लिए उनके आरोपों का विश्लेषण करते हुए इसी लेख में लिखा है कि ''ऊपर लिखे हुए प्रांतों का विस्तार अधिक से अधिक पानीपत से पटने तक हिमालय की तराई से विन्ध्याचल की तलहटी तक है और इसी बीच में ब्रजभाषा का पद्य अच्छी तरह समझा और पढ़ा लिखा जाता है। बंगाली, गुजराती मरहठे और मदरासियों को ब्रजभाषा की कविता ऐसी ही है जैसी उनलोगों की भाषा की कविता हमलोगों को है। कारण इसका यही है कि ब्रजभाषा और विशेषकर पद्य की ब्रजभाषा एक ऐसी भाषा है कि बोलने में कम प्रचलित है। यहाँ तक कि अपने मुख्य देशवालों की समझ में भी कभी-कभी नहीं आती और गद्य से वह नितांत बहिर्गत है। गद्य सब खड़ी बोली ही के अधिकार में है और यह खड़ी बोली इतनी प्रचलित है कि भारतवर्ष के सब खंडों में थोड़ी-बहुत समझी जाती है। वास्तव में, ठेठ हिंदुस्तानी जो साधारण उर्दू कहलाती है और साधारण खड़ी हिंदी में कुछ भी भेद नहीं है। अंतर उस समय हो जाता है जबकि उर्दू में अधिकतर फारसी के और हिंदी में अधिकांश संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का

बर्त्ताव किया जाता है। इस हिंदुस्तानी वा हिंदी का प्रचार भारतवर्ष में इतना विस्तृत है कि योरोपियन इसे यहां की *Lingua franca* फ्रेंच जबान करके समझते हैं और ठीक है। जब अंगरेजी बिना पढ़े बंगाली और मरहठे अथवा मद्रासी और गुजराती आपस मे बात करते हैं तो इसी (हिंदी) भाषा का आश्रय लेते हैं। सिंध का रहनेवाला नेपाल के निवासियों से और कश्मीर का वासी कन्याकुमारी वाले से अंग्रेजी के अतिरिक्त इसी बोली में बातचीत कर सकता है। और जब हम यह देखते हैं कि जिन अक्षरों मे हिंदी लिखी जाती है उनकी वर्णमाला भी संपूर्ण भारतवर्ष से संबंध रखती है अर्थात् सब स्थानों में पढ़ी-लिखी जाती है तो हमको यहां तक कहने का साहस हो आता है कि यदि इस बिबिध भाषाओं के देश भारतवर्ष की कोई एक भाषा कही या मानी जा सकती है तो हिंदी ही मानी जा सकती है और वह हिंदी खड़ी हिंदी है--ब्रजभाषा की हिंदी नहीं।''[28]

राधाचरण गोस्वामी के ज्यादातर आरोपों का खंडन श्रीधर पाठक ने अपने लेख में किया है। कुछ सवालों का जवाब पाठक जी ने नहीं दिया है। गोस्वामी जी ने चंदवरदायी से हरिश्चन्द्र तक की काव्य-भाषा को, ब्रजभाषा बताया है। यह सच नहीं है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 1883 ई. में लिखे एक लेख 'हिंदी-भाषा' में इस बाबत सही लिखा है कि ''यह नियम अकबर के समय से पूर्व नहीं था, क्योंकि मोहम्मद मलिक जाइसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया।''[29] आश्चर्यजनक है कि गोस्वामी जी ने 'पृथ्वीरायसा' और 'तुलसीकृत रामायण' को ब्रजभाषा काव्य के उदाहरणस्वरूप पेश किया है। इसके अलावा गद्य खड़ीबोली हिंदी में और पद्य ब्रजभाषा में, को बेहतर मानते हुए राधाचरण गोस्वामी का कहना है कि 'संस्कृत नाटकों में साहित्य के लालित्य के लिए संस्कृत, प्राकृत, पैशाची कई भाषा-व्यवहार की गई हैं।' दरअसल यह कथन उस युग की नाट्य-भाषा में छिपी विचारधारा को नहीं समझने का नतीजा है। संस्कृत नाटकों में द्विज पुरूष पात्र संस्कृत में संवाद बोलता है जबकि स्त्री और शूद्र पात्र प्राकृत, पैशाची आदि लोकभाषा में। इसे 'साहित्यिक लालित्य' समझना गोस्वामी जी के सोच का खुलासा करता है। यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि

'हिन्दोस्थान' के संपादक ''मदनमोहन मालवीय ने 20 दिसंबर 1887 ई. को श्रीधर पाठक के लेख के साथ संपादकीय टिप्पणी लिखकर खड़ी बोली पद्य के प्रति अपना समर्थन इजहार किया था। अयोध्या प्रसाद खत्री ने जो बात कही थी और 'खड़ी बोली का पद्य' की सिफारिश की थी; 'हिंन्दोस्थान' के संपादक ने उसे दोहराया है। ''जितनी भाषा आज तक संसार में बोली गई है प्रायः उन सबमें कविता की गई है और हम कोई कारण नहीं देखते जिससे कि आजकल की हिंदी वा खड़ीबोली इस सांसारिक नियम से बाहर हो। यह बात दूसरी है कि चिरकाल के परिचय और अभ्यास तथा कुछ स्वरादिकों की कोमलता के कारण हिंदी के उस रूप की कविता जिसको हम ब्रजभाषा कहते हैं, हमको अधिक मधुर, मनोहर और प्यारी लगती है किंतु कालांतर में प्रचलित भाषा की कविता भी हमको वैसी ही मधुर और मनोहर लगेगी।''[30]

अपने लेख का जवाब और 'हिंदोस्थान' की संपादकीय टिप्पणी पढ़कर राधाचरण गोस्वामी ने 'प्रतिवाद' लिखा। यह 15 जनवरी 1888 ई. को 'हिंदोस्थान' में छपा। ''जो मैंने पिशाची, डाकिनी आदि खड़ी बोली की कविता को लिखा है वह यथार्थ है।.....मेरे मित्र (श्रीधर पाठक) का यह कथन और इसकी बड़ी उत्तेजना कि ब्रजभाषा की कविता सब देशों में नहीं समझी जा सकती, खड़ी बोली की कविता सब देशवासी समझेंगें, भ्रम है। हमें कृपा करके उन शब्दों को बतला दें जो ब्रजभाषा में नहीं है, और हिंदी में है या ब्रजभाषा में कठिन और हिंदी में सरल है। कविता का समझना साधारण नहीं है, उसके लिए कुछ ज्ञान अवश्य सापेक्ष है।....यदि कविता के मनोहाररित्व आदि गुणों पर दृष्टि न देकर केवल छंदोबद्ध कर देना ही अभिप्राय है, तो फिर गद्य ने क्या चोरी की? छंद में लिखने की क्या आवश्यकता है? जिस प्रकार से छंद बनाये जाते हैं, उस प्रकार से कोई नहीं बोलता? फिर जबकि ब्रजभाषा और हिंदी में कुछ अंतर नहीं है, जबकि हिंदी के बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने उत्तम-उत्तम ग्रंथों में इसी का प्रयोग किया है, जबकि यह भाषा काव्य के सर्वगुणों से शोभित है, जबकि हमारे देश के कवियों की यही भाषा है, जबकि खड़ी बोली मधुर कविता के उपयुक्त नहीं, तब क्या अवश्य है कि इसी का आग्रह किया जाय?.....हमारे मित्र का

यह अभिप्राय नहीं कि ब्रजभाषा की कविता लुप्त हो और जबतक जगत में काव्य की चवर्चा है ऐसा होना असंभव है, तथापि हमारे दूसरे मित्र अयोध्या प्रसाद जी तो ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से दूध की मक्खी की तरह निकालना चाहते हैं। खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो ब्रजभाषा में न कविता कर सकते हैं न काव्य के तत्व को जानते हैं और कविता करने को आतुर हैं, जो इससे भिन्न प्रकृति के मनुष्य हैं वह कभी ऐसे मत को (सिवाय हमारे मित्र के) स्वीकार नहीं कर सकते। नितांत इस पक्ष में ब्रजभाषा की कविता को हिंदी से निकाल देने से ब्रजभाषा की भी हानि है और हिंदी की भी हानि है। हम नहीं जानते कि तब हिंदी पद्य के स्थान में हमारे मित्र किस कविता को लेकर हिंदी काव्य का अभिमान करेंगे? और किसके आधार पर हिंदी काव्य-रचना करेंगे? हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ी बोली की कविता की चेष्टा की जाय तो फिर खड़ी बोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाय। इधर गद्य में सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुस ही पड़े, उधर पद्य में भी फारसी भरी गई तो सहज ही झगड़ा निबटा.....।''

राधाचरण गोस्वामी के इस लेख का जवाब श्रीधर पाठक ने 'खड़ी हिंदी में कविता' लिख कर दिया। यह लेख 3 फरवरी और 4 फरवरी 1888 ई. को 'हिंदोस्थान' में छपा। गोस्वामी जी ने 'प्रतिवाद' में पाठक जी के मत 'ब्रजभाषा की कविता सब देशों में नहीं समझी जाती और खड़ी भाषा की कविता सब समझ सकेंगे' को भ्रम कहा था। जबकि 20 दिसंबर को छपे आलेख में श्रीधर पाठक ने प्रमाण के साथ इसे साबित किया था। फिर भी राधाचरण गोस्वामी ने इसे भ्रम कहा है तो क्या कहा जाए? श्रीधर पाठक ने आगे ठीक लिखा है कि ''ब्रजभाषा और खड़ी हिंदी का पद्य वा गद्य लिखने वा समझने के लिए व्याकरण संबंधीय भिन्न 2 नियमों का ज्ञान अपेक्षित है.....और जिन्हें जनभाषा को प्रांतिक अंगों से सम्यक अभिज्ञता प्राप्त नहीं है वे उसके काव्य को झटिति वा सुगमता से नहीं समझ सकते--परंतु खड़ी बोली की कविता इस कारण से कि उस बोली का प्रचार और विस्तार ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक है और यहां की शिक्षित समाज की अब 'मातृभाषा' है बिना बड़े आयास के

समझ में आ सकती और विशेष समझी जाने के कारण विशेष लाभ पहुंचा सकती है।"[32] राधाचरण गोस्वामी ने उन शब्दों के बारे में पूछा था जो ब्रजभाषा में नहीं है या खड़ी बोली की अपेक्षा कठिन है। श्रीधर पाठक ने विस्तार पूर्वक, उदाहरण के साथ इस सवाल का जवाब दिया है। इन्होंने कविता को समझने के लिए ठीक ही केवल उस भाषा का सम्यक ज्ञान जरूरी माना, जिसकी कविता समझना उद्देश्य हो, क्योंकि भाषा के जरिए भाव समझा जा सकता है। काबिलेगौर है कि श्रीधर पाठक उत्कृष्ट कविता उसे मानते हैं जिसके द्वारा अपूर्व भाव सुगम शब्दों में प्रकाशित है। इसके साथ ही अलंकार जानने-पहचानने को, कविता समझने की शर्त मानने से पाठक जी इंकार करते हैं। राधाचरण गोस्वामी ने खड़ीबोली को मधुर कविता के लिए उपयुक्त नहीं माना था। इसके जवाब में श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली कविता की उत्कृष्टता व मधुरता साबित करने के लिए कई छंदों में अपनी रची कविता को उदाहरणस्वरूप दिखाया। उस दौर तक खड़ी बोली में रचना करनेवाले कवियों की तादाद काफी कम थी। इसलिए श्रीधर पाठक को अपनी रची कविता उदाहरण के तौर पर रखनी पड़ी। श्रीधर पाठक ने बिल्कुल ठीक कहा कि "खड़ी हिंदी की कविता अभी बाल्यावस्था में है, अभी इसका आरंभ ही है। अभी कवियों ने अपनी शक्ति को इसपर भली भांति परीक्षित नहीं किया तो फिर क्योंकर कहा जा सकता है कि इसकी कविता में कविता के गुण नहीं आ सकते वा इसकी भाषा काव्योपयोगी नहीं है? एक साथ ही कोई कार्य उत्कृष्टता की परमावधि को नहीं पहुँच सकता। वाल्मीकि के काव्य में जो कि संस्कृत का आदिकाव्य समझा जाता है उतने मनोहारित्व आदि गुण कहाँ हैं जितने उसके पीछेवाले कालिदास आदि के लेखों में है। इस संसार में एक वस्तु एक ही बार उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ती है, फिर या तो स्थिर हो जाती है या गिर जाती है। ब्रजभाषा की कविता कई बातों में उन्नति की पराकाष्ठा से भी परे पहुँच चुकी है और यद्यपि अनेकों (अनेक) अन्य बातों में उसे उन्नति की समाई है पर अवसर नहीं। ब्रजभाषा की कविता को अब यदि अवसान नहीं तो विश्राम लेने का समय अवश्य आ पहुंचा है--उसको अधिक श्रम देना आवश्यक नहीं।"[33]

श्रीधर पाठक ने इसी लेख में हिंदी को तीन काल में बाँटा है। पहले काल में

'प्राचीन हिंदी'; जो चंदवरदाई के समय से मलिक मुहम्मद जायसी तक--यानी पृथ्वीराज के शासनकाल से हुमायूं के शासनकाल--को रखा है। दूसरे काल को 'मध्यकालीन या ब्रजभाषा' की संज्ञा देते हुए सूरदास के साथ यानी अकबर के शासनकाल से शुरूआत माना। श्रीधर पाठक ने स्वीकार किया है कि यद्यपि यह कविता में जीवित है; फिर भी हरिश्चन्द्र के साथ इसकी समाप्ति कही जा सकती है। इन्होंने तीसरे काल को नवीन या खड़ी हिंदी कहा है। जब से दिल्ली-आगरे में उर्दू बोली जाने लगी तब से बोलचाल में कमोबेश इसका व्यवहार होता आ रहा है। पाठक जी साहित्य में लल्लू लाल के 'प्रेमसागर' के साथ इसका आरंभ मानते हैं। इन्होंने गोस्वामी जी के लेख में विरोधाभास देखते हुए ठीक नोट किया कि वे एक स्थान में ब्रजभाषा और हिंदी को भिन्न कहते हैं, दूसरे स्थान में उनमें कुछ अंतर ही नहीं मानते। श्रीधर पाठक ने लिखा है कि पहले के कवियों को केवल ब्रजभाषा थी। इसलिए उन लोगों ने सिर्फ ब्रजभाषा में उत्तम ग्रंथों की रचना की है। अब उनके साथ 'खड़ी भाषा' भी होगी। राधाचरण गोस्वामी ने आरोप लगाया था कि खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो ब्रजभाषा में न तो कविता कर सकते हैं, न काव्य के तत्व को जाने हैं। फिर भी कविता करने के लिए आतुर है। इससे भिन्न प्रकृति के मनुष्य यानी जो ब्रजभाषा में कविता रच सकते हैं। तथा काव्य के तत्व को समझते हैं, वे खड़ी बोली के पक्षधर नहीं हो सकते। गोस्वामी जी की यह मान्यता तत्कालीन वास्तविकता से कोसों दूर है। श्रीधर पाठक खुद ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। साथ ही खड़ी बोली पद्य के प्रबल समर्थक भी थे। पाठक जी ने उनकी उक्त मान्यता का खंडन करते हुए लिखा है कि खड़ी बोली पद्य की लालसा उनलोगों को है जो खड़ी हिंदी के सच्चे हितैषी हैं। साथ ही खड़ी हिंदी को गद्य के अलावा पद्य की गद्दी पर भी पहुंचाना चाहते हैं।

राधाचरण गोस्वामी की एक बड़ी आशंका थी कि खड़ी बोली के समर्थक ब्रजभाषा की कविता को दूध की मक्खी की तरह निकालना चाहते हैं। दूसरी प्रबल आशंका थी कि खड़ी बोली की कविता की कोशिश करने पर खड़ी बोली की जगह, कुछ दिनों में केवल उर्दू की कविता का प्रचार हो जाएगा। खड़ी बोली गद्य में,

सरकारी किताबों में फारसी शब्द घुस ही गए हैं, पद्य में भी फारसी भर जाएगी। इससे जुड़ा एक सवाल था कि हिंदी पद्य के स्थान में खड़ी बोली के समर्थक किस कविता को लेकर हिंदी कविता का अभिमान करेंगे? किसके आधार पर हिंदी काव्य की रचना करेंगे? श्रीधर पाठक खड़ी बोली पद्य का समर्थन करते हुए ब्रजभाषा कविता को विरासत मानने से इंकार नहीं कर रहे थे। ब्रजभाषा कविता की रचना अब होनी चाहिए या नहीं--इस मुद्दे पर श्रीधर पाठक के मन में द्वंद्व दिखता है। वे खुद ब्रजभाषा कविता के साथ-साथ खड़ी बोली में कविताएं रचते थे। इससे कयास लगाया जा सकता है कि ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना के पक्ष में थे। जबकि अपने इसी लेख में उन्होंने दो जगह ब्रजभाषा कविता के बारे में लिखा है कि 'ब्रजभाषा कविता को अब यदि अवसान नहीं तो विश्राम लेने का समय अवश्य आ पहुंचा है, उसको अधिक श्रम देना आवश्यक नहीं।' इसके साथ ही अंग्रेजी के आधार पर हिंदी का काल-विभाजन करते वक्त ब्रजभाषा के बारे में लिखा है कि 'इसका सूरदास अर्थात् अकबर के समय से आरंभ है और कविता में यह अभी तक जीवित है, यद्यपि हरिश्चन्द्र के साथ इसकी समाप्ति कही जा सकती है।' खड़ी बोली-पद्य आंदोलन के नेता अयोध्या प्रसाद खत्री के विचार और श्रीधर पाठक के विचार में यहाँ फ़र्क दिखता है। इस मुद्दे पर जो द्वंद्व पाठक जी के विचारों से झलकता है, वह खत्री जी के यहाँ नहीं दिखता।

राधाचरण गोस्वामी का सवाल था कि किसके आधार पर खड़ी बोली के समर्थक हिंदी कविता की रचना करेंगे? इसका जवाब देते हुए श्रीधर पाठक ने लिखा है। "हमलोग ब्रजभाषा और खड़ी भाषा दोनों की कविता से अपनी आराध्य हिंदी को द्विगुणित, चतुरगुणित आभूषण पहनाकर और विविध रीति से उसके 'अटल' भंडार को बढ़ाकर उसके असीम वैभव के सदा अभिमानी होंगे और दोनों का आधार साधार रखेंगे।"[34] गोस्वामी जी की सबसे बड़ी चिंता थी कि खड़ी बोली में कविता रचने से थोड़े दिनों बाद केवल उर्दू कविता का प्रचार हो जाएगा और कविता में भी फारसी घुस जाएगी। श्रीधर पाठक ने गोस्वामी जी की चिंता दूर करने के लिए लिखा कि "खड़ी हिन्दी की कविता में उर्दू नहीं घुसने पावेगी। जब हम हिंदी की प्रतिष्ठा

के परिरक्षण में सदा सचेत रहेंगे तो उर्दू की ताव क्या जो चौखट के भीतर पाँव रख सके। सर्कार अपने स्कूलों की हिंदी में अप्रचलित उर्दू शब्दों का बर्ताव कराती है, पर हिंदी के पक्षपाती तो उसके अनुयायी नहीं, हिंदी के गद्य-पद्य की उन्नति हमलोगों पर निर्भर है, सर्कार पर नहीं।''[35] असल में, खड़ी बोली काव्य-भाषा के विरोध का यह सबसे बड़ा कारण था। गौरतलब है कि इस मुद्दे पर 'खड़ीबोली का पद्य' के विरोधी राधाचरण गोस्वामी और समर्थक श्रीधर पाठक की भाषा-नीति समान है। फ़र्क इतना ही है कि गोस्वामी जी को डर है कि खड़ी बोली में कविता रचने पर, कविता में फारसी घुस जाएगी। जबकि श्रीधर पाठक को इसका डर नहीं है। वे उर्दू-फारसी से अपनी हिंदी कविता को चाक-चौबंद रखने का विश्वास प्रगट करते हैं। 'हिंदी के पक्षपातियों' पर पाठक जी को विश्वास है कि वे सरकार की नीति का अनुयायी बने बगैर हिंदी कविता की रक्षा करेंगे। उर्दू-फारसी शब्दों से हिंदी-कविता की पवित्रता को बचाने की जो चिंता राधाचरण गोस्वामी को है; वह चिंता श्रीधर पाठक में भी दिखती है। तभी तो पाठक जी कहते हैं कि जब हम हिंदी की प्रतिष्ठा के परिरक्षण में सदा सचेत रहेंगे तो उर्दू की क्या ताव जो चौखट के भीतर पांव रख सके। ऐसा प्रतीत होता है मानो उर्दू-फारसी शब्द के प्रयोग से हिंदी की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी। आखिर यह कैसी हिंदी है? किस हिंदी की 'प्रतिष्ठा' अपने ही उर्दू-फारसी शब्दों के प्रयोग से समाप्त हो जाएगी? पाठक जी किस हिंदी को बचाने के लिए 'चौखट के भीतर पांव रखने से' उर्दू को रोकने का आत्मविश्वास व्यक्त करते हैं? ऐसा करके, राधाचरण गोस्वामी और श्रीधर पाठक--दोनों हिंदी को किस रूप में गढ़ना चाहते हैं?

स्कूली हिंदी में फारसी शब्द के प्रयोग से गोस्वामी जी का डर बढ़ गया था। श्रीधर पाठक हिंदी के गद्य-पद्य की उन्नति को अपने जैसे हिंदी के पक्षपातियों पर निर्भर मानते थे। सरकार की इस नीति से वे हिंदी-गद्य-पद्य को बचाने की दिलासा दे रहे थे। उल्लेखनीय है कि सरकार की उक्त हिंदी से हिंदी-उर्दू करीब आ रही थी। यह स्वाभाविक भी था। हिंदी-उर्दू को करीब लाना वैसे ही तत्कालीन ऐतिहासिक और राजनीतिक जरूरत थी, जैसे गद्य-पद्य की भाषा में एकरूपता लाना। समूचे हिंदी-इलाके को एक सूत्र में बांधने के लिए यह आवश्यक कदम था। यह ऐतिहासिक विडंबना

है कि ब्रजभाषा कविता के पक्षधर राधाचरण गोस्वामी और खड़ी बोली कविता के पक्षधर श्रीधर पाठक इस सवाल पर एक साथ खड़े थे। आखिर इसके पीछे वजह क्या थी? लल्लू लाल 'प्रेगमसागर' में प्रचलित 'यावनी' शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं कर रहे थे? जिस प्रकार 'यवन' के कदम रखने मात्र से कृष्ण-मंदिर या भक्त का घर अपवित्र हो जाता था। उसी प्रकार कृष्ण-भक्ति से जुड़ी रचनाएं भी 'यावनी' शब्दों के प्रयोग से अपवित्र जो हो जाती। यही वजह थी कि 'यावनी' शब्दों से हिंदी को बचाने की जद्दोजहद चल रही थी। 'यावनी' शब्द से हिंदी को बचाने के प्रयास में कृत्रिम और अस्वाभाविक हिंदी गढ़ना, इन लोगों को गवारा था।

गद्य का उपयोग करना--ऐसी जरूरत थी कि जिसे वे लोग नजरअंदाज नहीं कर सकते थे। ऐसा लगता है कि अगर पद्य से ही सारा काम चल जाता तो संभवतः वे लोग गद्य नहीं लिखते। उस दौर में ब्रजभाषा की सीमा उजागर हो गई थी। ब्रजभाषा गद्य से काम नहीं चल सकता था। इसीलिए खड़ी बोली में गद्य लिखने के लिए खड़ी बोली हिंदी-गद्य से उर्दू-फारसी के शब्दों को छांटकर, संस्कृतनिष्ठ शब्द भर रहे थे। गोया कि इसके जरिए 'पवित्र' हिंदी भाषा गढ़ रहे हों। खड़ी बोली के एक साहित्यिक रूप उर्दू में ज्यादातर मुस्लिम रचनाकार रचनाएं कर रहे थे। इसमें फारसी शब्द का खुलकर प्रयोग भी होता था। यही वजह थी कि राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक सरीखे रचनाकार इस भाषा से दूरी कायम कर रहे थे। इसकी पुष्टि राधाकृष्ण दास के इस बयान से होती है "खड़ी बोली को मुसलमान जाति ने उर्दू बनाकर ग्रहण कर लिया, इसलिए हिंदुओं ने विशेष आग्रह ब्रजभाषा की ओर किया।"[36] 'यावनी' शब्दों के प्रति वैष्णव संप्रदाय के लोगों के रवैये का पता राधाचरण गोस्वामी के इस बयान से चलता है कि "मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ उसमें अंग्रेजी पढ़ना तो दूर है, यदि कोई फारसी, अंग्रेजी का शब्द भूल से भी मुख से निकल जाय तो बहुत पश्चाताप करना पड़े।"[37] राधाकृष्ण दास ने भी लिखा है कि ....."श्री वल्लभाचार्य जी के संप्रदाय में अबतक यह प्रथा है कि भगवत्सेवा के समय ब्रजभाषा का बोला जाना ही उचित समझा जाता है, यावनी शब्दों का प्रयोग निषिद्ध है।"[38] कहने की जरूरत नहीं कि 'खड़ी बोली का पद्य' का विरोध राधाचरण

गोस्वामी सरीखे विद्वान धार्मिक आग्रह की वजह से ही कर रहे थे। डॉ. वीरभारत तलवार ने बिलकुल ठीक नोट किया है "असल में इस विवाद में मुसलमान समाया हुआ था।"[39]

दरअसल, अयोध्या प्रसाद खत्री की भाषा-नीति के कारण पश्चिमोत्तर प्रांत के साहित्यकारों की नीति से इसकी टकराहट अनिवार्य थी। खत्री जी को आमफहम उर्दू-फारसी शब्दों से परहेज नहीं था। वे आदर्श हिंदी में इनका प्रयोग बिलकुल जायज मानते थे। इसके साथ ही वे ब्रजभाषा की बजाय खड़ी बोली के एक साहित्यिक रूप -उर्दू की विकसित काव्य-परंपरा के आधार पर खड़ी बोली हिंदी-काव्य की सिफारिश कर रहे थे। वह ब्रजभाषा की तुलना में उर्दू को हिंदी के समीप मानते थे। खत्री जी की यह मान्यता भाषा-शास्त्र की दृष्टि से सही थी लेकिन भारतेंदु-मंडल के साहित्यकारों के धार्मिक हठ के पक्ष में नहीं थी। खत्री जी 'मुंशी स्टाइल या मुंशी हिंदी' को हिंदी-भाषा का आदर्श नमूना मानते थे। 'मुंशी हिंदी' वह भाषा है जिसमें संस्कृत और अरबी-फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। भारतेंदु-मंडल के साहित्यकार संस्कृतनिष्ठ हिंदी के पक्षधर थे, जिसे खत्री जी पंडित हिंदी' कहते थे। उस दौर में हिंदी-उर्दू को करीब लाने के मकसद से अयोध्या प्रसाद खत्री मुसलमानों से 'मोलवी हिंदी' तथा हिंदुओं से '-पंडित हिंदी' छोड़ने की मांग कर रहे थे। इन दोनों तबकों से 'मुंशी हिंदी' को स्वीकार करने की वकालत कर रहे थे। खत्री जी की यह भाषा-नीति राय सोहनलाल और राजा शिवप्रसाद 'सितारै हिंद' की भाषा-नीति के करीब थी। 'भारतेंदु मंडल' के साहित्यकार राजा शिवप्रसाद 'सितारै हिंद' की भाषा-नीति के विरोधी थे।

भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों का विरोध राजा शिवप्रसाद की भाषा-नीति तक ही सीमित नहीं था। बल्कि व्यक्तिगत जीवन में, हर मोर्चे पर, इनका विरोध हो रहा था। राजा शिवप्रसाद 'सितारै हिंद' का परिचय देते हुए राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' के पहले अंक में लिखा है कि "कई समाचार पत्रों ने राजा साहब से पूछा है आप कौन हैं? हम राजा साहब की ओर से जवाब देते हैं। राजा साहब कन्नौज

के राजा जयचंद हैं। राजा साहब मुर्शिदाबाद नाशकारी अमीचंद हैं। राजा साहब लंकाधिपत के भाई विभीषण हैं। राजा साहब इंगलिश मैन और पाईनियर वा सिविल मिलिटिरी गजट के जीवयोग हैं....राजासाहब हिंदुस्तान की फूट के ताजे नमूना हैं।.. ..विशेष क्या राजा साहब यथार्थ ही शिव हैं। जैसे शिव के कंठ में विष है, उसी प्रकार उनके कंठ में विष है। इन्हीं के उच्छिष्ट विष को लेकर इंगलिशमैन, पाइनियर, सर्प, ब्रान्सन आदि बिच्छू और कविवचन सुधा आदि मच्छर लहरा रहे हैं। जिसे जीने की इच्छा हो, वह इन्हें और इनके भूत-प्रेत परिकर को सहस्र हस्त से प्रणाम करे। राजासाहब हिंदुस्तान की उन्नति की प्रलय के लिए त्रिनेत्र, त्रिशूलधारी, महाकाल, विकराल, गुंडमान, सर्वांगपूरित व्याल, श्मशानवासी, अविनाशी शिव हैं.....।"[40] पश्चिमोत्तर प्रांत में भारतेंदु-मंडल के साहित्यकारों का राजा शिवप्रसाद 'सितारै हिंद' से सत्ता-संघर्ष चल रहा था। राधाचरण गोस्वामी का उपरोक्त कथन 'कविवचन सुधा' की सरकारी खरीद बंद होने के बाद राजाशिवप्रसाद के खिलाफ खुलकर सामने आने के बाद लिखा गया है। राजाशिवप्रसाद के बारे में 'भारतेंदु' में छपी इस टिप्पणी से विरोध के स्वर और स्तर का पता चलता है। इतिहास के इस दौर में अयोध्या प्रसाद खत्री की भाषा-नीति का राजा शिव प्रसाद की भाषा-नीति के करीब होना; भारतेंदु-मंडल के साहित्यकारों को गवारा न था। भले ही इन दोनों की भाषा-नीति जायज थी। अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है कि "प्रेमसागर के स्टाइल को (का) लोग अनुकरण करने लगे और उसी स्टाइल को आधुनिक हिंदी समझने लगे। इस खड़ी बोली के पहिले लिखैयेः *First Writer*; यदि राय सोहनलाल अथवा राजाशिव प्रसाद होते तो इतना बखेड़ा न होता।"[41] उन्नीसवीं सदी के उस दौर में हिंदी-उर्दू का विवाद अपने चरम पर था। भाषा के जरिए सरकारी नौकरी पाने की होड़ में, पश्चिमोत्तर प्रांत में, हिंदी-उर्दू के इस विवाद को तत्कालीन बुद्धिजीवियों ने सांप्रदायिक रंग प्रदान किया था। हिंदी के रचनाकार उर्दू के खिलाफ रचनाएं कर रहे थे तथा उर्दू के रचनाकार हिंदी के खिलाफ। ऐसे माहौल में अयोध्या प्रसाद खत्री की सुलह परक भाषा-नीति 'भारतेंदु-मंडल' के रचनाकारों को पसंद नहीं आई। काबिलेगौर है कि 'खड़ी बोली का पद्य' के पक्ष में सर्वाधिक मुखर श्रीधर पाठक खड़ीबोली में कविता

होनी चाहिए-सिर्फ इस मुद्दे पर अयोध्या प्रसाद खत्री के साथ थे। यह कविता किस हिंदी में होनी चाहिए? इस मुद्दे पर दोनों के विचार अलग-अलग थे। अयोध्या प्रसाद खत्री 'मुंशी हिंदी' का पक्ष लेते थे जबकि पाठक जी'पंडित हिंदी' का। 'मुंशी हिंदी' में आमफहम उर्दू-फारसी शब्दों से परहेज नहीं था। 'पंडित हिंदी' में उर्दू-फारसी शब्दों से परहेज किया जाता था। श्रीधर पाठक हिंदी-काव्य को चाक-चौबंद कर उर्दू शब्दों को प्रवेश नहीं होने देने के लिए संकल्प व्यक्त कर चुके थे।

यह ऐतिहासिक विडंबना थी कि भाषा-नीति करीब होने के बावजूद अयोध्या प्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' को राजा शिवप्रसाद 'सितारै हिंद' का भी समर्थन नहीं मिला। राजाशिव प्रसाद 'भारतेंदु मंडल' के समानंतर दूसरी हस्ती थे। खत्री जी ने इनको किताब भेजी थी। किताब के बारे में इनकी राय मांगी थी। 21 सितंबर 1887 ई. को अंग्रेजी में लिखी चिट्ठी में राजा शिवप्रसाद ने खत्री जी को लिखा कि *"Sir, in reply to your letter of the 19th instant I am sorry to state that now I lead a very retired life and have no time to go through the book you have so kindly sent or to write anything about it."*[42]

अयोध्या प्रसाद खत्री ने राजाशिवप्रसाद के पत्र को अपनी किताब में छापकर उसके नीचे एक टिप्पणी लिखी है। "इस चिठी के छापने का प्रयोजन यह है कि लोग ऐसा न कहें कि राजा शिवप्रसाद 'सितारैहिंद' से इस विषय में राय क्यों न ली गई। बाबू हरिश्चन्द्र और राजाशिव प्रसाद दोनों ने हिंदी की ममता छोड़ दी। भारतेंदु तो स्वर्ग *Tansfer* हो गये परंतु राजा साहब ने इस मृत लोक में रहते ही हिंदी का सेह (स्नेह) छोड़ दिया।"[43]

यह गौरतलब है कि अयोध्या प्रसाद खत्री राजाशिवप्रसाद 'सितारैहिंद' की भाषा को आदर्श भाषा नहीं मानते थे। वह राय सोहन लाल की भाषा को आदर्श मानते थे। राय सोहन लाल और राजाशिवप्रसाद की भाषा में फ़र्क करते हुए खत्री जी ने लिखा है "राजा शिवप्रसाद के स्टाइल और राय सोहनलाल के स्टाइल में कुछ

अन्तर है। राजा शिवप्रसाद अब हिंदी को फारसी अक्षरों में लिखते हैं तो कुछ शब्द बदल देते हैं परंतु बहुत कम। 'विद्यांकुर' 78 पृष्ठ की पुस्तक है, फ़ारसी अक्षरों हक़ायकुल मौजूदात के नाम से जब इसको लिक्खा है तो 66 शब्द बदल दिये हैं और उनकी फिहरिश्त किताब के अंत में लिख दी है। राय सोहनलाल ने *scientific terms* को भी मौलवी और पण्डित के बीच के स्टाइल में : जिसको मैं 'मुन्शी स्टाइल' और यूरोपियन विद्वान हिंदुस्तानी कहते हैं: निर्माण किया है। दोनों अक्षरों में एक ही स्टाइल लिखते हैं, शब्द कुछ भी नहीं बदलते, दोनों अक्षरों में पुस्तकों का एक ही नाम रखते हैं। शुद्ध हिंदुस्तानी आप ही लिखते हैं मैं उनके *tone* और *accent* के विषय में उनसे नहीं मिलता। राजा शिवप्रसाद का *accent* राय सोहनलाल से उत्तम है। 'चमके थी' 'खिले था', मिले था' खले या इन काः राय सोहनलाल का निराला *accent* है, जिसे मैं किताबों में लिखना पसंद नहीं करता। राजाशिवप्रसाद का फारसी और नागरी अक्षरों में पुस्तकों का भिन्न-भिन्न नाम रखना और किताबों में जुदे-जुदे अक्षरों के कारण जुदे-जुदे शब्दों की फेहरिश्त देना, मेरी समझ में ठीक नहीं है। हिन्दुस्तानी स्टाइल लिखने के उद्देश्य से यह विरूद्ध है। हिन्दुस्तानी स्टाइल लिखनेवालों को ठेठ हिन्दी के शब्दों पर भी ध्यान देना चाहिए।"[44] असल में खत्री जी उन्नीसवीं सदी के साहित्यकारों की तुलना में राजा शिवप्रसाद की भाषा को अच्छा मानते थे। इसकी वजह थी कि सितारैहिंद 'यावनी' शब्दों से परहेज नहीं करते थे। लेकिन सितारैहिंद की अपेक्षा राय सोहनलाल की भाषा को बेहतर मानते थे। अयोध्या प्रसाद खत्री की भाषा-नीति उस दौर से काफी आगे की थी। यह दिलचस्प है कि हिंदी के आलोचक भारतेंदु, राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों का उर्दू के प्रति रवैया बताने के लिए इनकी उर्दू-रचना का हवाला देते हैं। इनको प्रगतिशील बताने के लिए तर्क देते है कि भारतेंदु 'रसा' उपनाम से और राधाचरण गोस्वामी 'अब्र' उपनाम से उर्दू में ग़ज़ल लिखते थे। इस तथ्य का विश्लेषण ऐसे बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है कि मानो उर्दू में ग़ज़ल लिखना प्रगतिशीलता की एकमात्र कसौटी है। हिंदी-उर्दू विवाद के मुद्दे पर इनकी प्रगतिशीलता की जांच करने के लिए यह देखना जरूरी है कि इन दोनों भाषा की एकता के संबंध में इनकी क्या राय थी? इस विवाद

को इनलोगों ने किस तरह देखा-परखा था? इस कसौटी पर तत्कालीन नायकों का चरित्र कमजोर प्रतीत होता है। इन दोनों भाषाओं को नजदीक लाने के बजाय ये लोग दूर करने की कोशिश कर रहे थे। हिंदी की रचनाओं से भारतेंदु मंडल के साहित्यकार उर्दू को चुन-चुनकर हटा रहे थे। उसकी जगह संस्कृतनिष्ठ शब्दों को रख रहे थे।

'खड़ी बोली का पद्य' का समर्थन उस दौर में गिने-चुने लोगों ने किया। अयोध्या प्रसाद खत्री के मकसद को बगैर समझे कई लोगों ने विरोध किया। ब्रजभाषा के जिन रचनाकारों ने खड़ीबोली के लोकरागों-लावनी, खयाल, ठुमरी को प्रश्रय दिया था, अब बंद कर दिया। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ रचित 'हर्मिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से किया था। 1884 ई. में राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' में छापा था। राधाचरण गोस्वामी की समाज-सुधार-आंदोलन में भूमिका के बारे में बताते हुए डा. वीरभारत तलवार ने लिखा है कि "सुधार आंदोलन में कुछ आगे बढ़कर पीछे की ओर लौटे थे"[45] यह बात खड़ीबोली कविता के संदर्भ में भी सटीक बैठती है। 'भारतेंदु' में कभी-कभार खड़ीबोली में कविता छापनेवाले तथा खुद कभी-कभार खड़ीबोली में कविता रचनेवाले राधाचरण गोस्वामी दो कदम आगे बढ़कर चार कदम पीछे लौट गए थे। खड़ी बोली कविता के कट्टर विरोधी बन गए। इंगलैंड में रहने वाले भारत-समर्थक और हिन्दी के विद्वान फ्रेडरिक पिंकौट--जिन्होंने लंदन से 'खड़ीबोली का पद्य' का एक संस्करण, भूमिका लिखकर छपवाया--भी पहली बार खत्री जी का उद्देश्य नहीं समझ पाए थे। लंदन से प्रकाशित 'द ओवरलैंड मेल' में 15 अगस्त 1887 को फ्रेडरिक पिंकौट ने इस किताब की समीक्षा लिखी।

"But it is a Pity that Ayodhya Prasad (who is a man of ability and genuine Patrotism) doesnot turn his attention to composition of real practical value. Such books as those we are noticing are half a century too late. Indian society is moving in a new direction and literary men who really wish to benefit their county must guide the stream of thought in its new channel. What India want of its authors now are educational works

giving accurate information about the world and its people,the arts, sciences manufactures, trades and occupations by which nations live and thrive-and this truthful information should be conveyed in plain common-sense prose. versification has done and awful amount of infury to the Indian mind by filling its readers with vapours and fancies and seducing them form the facts of life rhythmical witheries of phraseology. We sincerly hope that able man like Ayodya Prasad will abandon these profitless exposition of Poetic niceties, and will give their efforts to the formation of a manly form of Prose. The Hindi language is the most Vigorous form of speech in nothern India; and is well adapted, by its terseness and flexibility, to become the vehicle for the expression of scientific ideas or, indeed, to serve the purposes of any form of compositon, in which precision of thought demands accuracy in expression."[46]
अयोध्या प्रसाद खत्री की लिखी भूमिका को फ्रेडरिक पिंकौट ने समीक्षा लिखने से पहले नहीं पढ़ी थी। भूमिका पढ़ने के बाद वह 'खड़ी बोली का पद्य' का समर्थन करने लगे। *12, Wilson Road Camberwell, London* से 14 अक्तूबर 1887 को पिंकौट ने खत्री जी को एक चिट्ठी में लिखा कि *"You are quite right in thinking that I wrote my review of poetic selection before the preface reached me. My mistake was in thingking that you used the words Khari Boli in a loose way to express Hindi generally hence it seemed to me an omission of gravity to leave out every illustration of BrajBhasa, in which by for the greater part of Hindi poetry is composed. Your preface informed me that you wish to induce your countrymen to em-*

ploy the elegant form of the spoken language in poetry, in preference to the archaic and local dialect now usually employed. I agree with you heartily in that wish, and have repeatedly written my opinion on the point. I hold that every country should have its poetry in the finest form of the spoken language at the time the verses are composed. By the word "Finest Form" I donot mean a stilled and artificial form of language, bristling with rare and difficult words; but writen in strong, clear, forcible, language suited to the subject treated in the poem. The goodness of poetry depends more on the ideas expressed than on the language used. Too many modern Indan writers seem to think that a collection of high sounding words, in measured lines, constitutes poetry; hence they prefer the older forms of Hindi to give dignity to their compositions. Any thing you may do to counteract this unfortunate habit, will be beneficial to India. certainly if you induce writers to use good Khari Boli in verse, you will get them to take one step towards the general improvement of their poetry"[47]

लंदन में रहने वाले हिंदी-समर्थक फ्रेडरिक पिंकौट ने 'खड़ीबोली का पद्य' की उपयोगिता समझते हुए इसको छपवाया। जबकि तत्कालीन भारतीय विद्वान इसकी उपयोगिता समझ नहीं पा रहे थे। 'भारतेंदु मंडल' के एक प्रमुख साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट ने अपनी पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' (1 अक्तूबर-नवंर-दिसंबर 1887) के 'पुस्तक प्राप्ति' स्तंभ में लिखा कि "हम अपनी पद्यमयी सरस्वती को किसी दूसरे ढंग पर उतार मैली और कलुषित नहीं किया चाहते। पद्य या कविता उसी का नाम है जिस मार्ग भूषण, मतिराम, पद्माकर तथा सूर, तुलसी बिहारी प्रभृति महोदयगण चल चुके हैं क्योकि रस और माधुर्य जो कविता का प्राण है सेा इन रूखी खड़ी बोलियों

में कभी आने ही का नहीं।.....पद्य में खड़ीबोली उस स्त्री के समान भाषित होती है जिसका नख से शिख तक संपूर्ण अलंकार उतार लिया गया हो।" बालकृष्ण भट्ट भूल जाते हैं कि इनकी 'पद्यमयी सरस्वती' कई नए ढंग पर उतरने के बाद ही भूषण, मतिराम, पद्माकर आदि कवियों तक पहुंची है। भट्ट जी संस्कृत काव्य से ब्रजभाषा काव्य के बीच की भाषा-यात्रा को नहीं देख पाते हैं। राधाचरण गोस्वामी की तरह उदाहरण में सूर के साथ तुलसी दास का नाम लेने वक्त यह भूल जाते हैं कि तुलसी दास की सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामचरितमानस' ब्रजभाषा में नहीं रची गई है। राधाचरण गोस्वामी की तरह बालकृष्ण भट्ट 'खड़ी बोली का पद्य' आंदोलन से पहले कभी-कभार खड़ी बोली में रचना करते थे। तब क्या इनकी 'पद्यमयी सरस्वती कलुषित' नहीं होती थी? 1 अक्तूबर 1880 ई. को 'हिंदी प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट की एक खड़ीबोली रचना छपी है।

"अहल यूरप पूरा जेण्टिलम्यान कहलाता है हम।
बाबू न कहना फिर कभी मिस्टर कहा जाता है हम।।
कोट पतलून बूट पहने टोकरी सिर पर धरे।
साथ में कुते को लेकर सैर को जाता है हम।।
गंगा नहाना पूजा जप तप छोड़ा यह पाखण्ड सब।
घूरने मेमों को गिरिजा घर में नित जाता है हम।।
हम दयानतदार अपने कौम में मशहूर हैं।
सैकड़ों लोगों से चंदा ले के खा जाता है हम।।
खाना-पीना हिंदुओं का मुझको खुश आता नहीं।
बीफ कांटे चमचा से होटल में जा खाता है हम।।
भांग गांजा चर्स चंडू घर में छिप छिप पीते थे।
अब तो बेखटके हमेशा वाइन ढ़रकाता है हम।।"

'खड़ी बोली का पद्य' पहले भाग का तत्कालीन बड़े साहित्यकारों द्वारा विरोध किया जा रहा था। उसी दौरान खत्री जी ने इसका दूसरा भाग तैयार किया। इस खंड की भूमिका काफी लंबी हैं खत्री जी ने यह भूमिका 26 सितंबर 1887 ई.

को लिखकर तैयार की थी। अयोध्या प्रसाद खत्री पर शोध करनेवाले डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु का मानना है कि 'खड़ीबोली का पद्य' का दूसरे खंड का "प्रकाशन नारायण प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर से मुद्रित होकर 1889 ई. में पहली बार"[48] हुआ। डॉ. परिमलेंदु की यह बात सही नहीं है। क्योंकि 15 फरवरी-मार्च 1888 को प्रकाशित 'ब्राह्मण' में प्रतापनारायण मिश्र ने दोनों भाग के मिलने का जिक्र किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने ब्राह्मण के इसी अंक में 'खड़ीबोली का पद्य' शीर्षक लेख में लिखा है "इस नाम की बाबू अयोध्या प्रसाद जी खत्री मुज़फ़्फ़रपुर वासी कृत पुस्तक के दो भाग हमें सुहृदबर श्रीधर पाठक द्वारा प्राप्त हुए हैं।"[49] इस लेख में 'खड़ीबोली का पद्य' की तीखी समीक्षा है; जसका जवाब श्रीधर पाठक ने 8 मार्च 1888 ई. के 'हिंदोस्थान' में दिया है। इससे पता चलता है कि दूसरे खंड का प्रकाशन सितंबर 1887 ई. के बाद और फरवरी 1888 ई. के पहले हो चुका था। संभव है, 1889 ई. में दूसरे खंड का दूसरा संस्करण छपा हो। 'खड़ी बोली का पद्य' (दूसरे खंड) -'अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ' में संकलित है; लेकिन यहाँ किस प्रेस से तथा कब छपा इसका जिक्र नहीं है। डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु 1889 ई. में दूसरे खंड का छपना बताते हुए लिखते हैं कि नारायण प्रेस मुज़फ़्फ़रपुर से मुद्रित होकर इसकी एक हजार प्रतियां छपी थीं। ऐसे में यह ज्यादा तर्कसंगत लगता है कि डॉ. परिमलेंदु जिस संस्करण का जिक्र करते हैं; वह दूसरा संस्करण हो। बकौल डॉ. परिमलेंदु दूसरा खंड फ्रेडरिक पिंकौट को समर्पित है। दूसरा खंड भी बिना कीमत का था। इसे भी खत्री जी निःशुल्क बांटते थे।

बहरहाल, दूसरे खंड की (तैंतीस पृष्ठ की) लंबी भूमिका में खड़ी बोली हिंदी, उर्दू और ब्रजभाषा के संबंध में खत्री जी की धारणा विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त हुई है। इनकी भाषा नीति खुलकर सामने आई है। इस भूमिका में अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है कि "उर्दू को मैं हिंदी का एक स्टाइल समझता हूं। उर्दू पद्य को खड़ीबोली का पद्य मानता हूं।" अपनी इस मान्यता के समर्थन में खत्री जी ने जॉन बिम को *Comparative grammar of the modern Aryan Language* पृष्ठ-32 से उद्धृत किया है। जॉन बिम ने लिखा है कि *"It betrays therefore*

a radical misuderstanding of the whole bearings of the questions, and of the whole science of Philology to speak of Urdu and Hindi as two distinct languges." जॉन बिम के मत के अलावा राजा शिवप्रसाद के 'हिंदी व्याकरण', *A.F. Rudolf Haerlive* (जो *'Asiatic Society of Bengal's grammar of the eastern Hindi'* के *Philological secretary* थे) को उद्धृत कर अपनी बात को पुष्ट किया। खत्री जी को पता था कि 'मेरा मत लोक-विरूद्ध है।' यह ज्यादातर साहित्यकारों को रास नहीं आएगा। इसे गलत समझा जाएगा। इसलिए अपने समर्थन में उपरोक्त विद्वानों के बयान के अलावा 'पश्चिमोत्तर प्रांत में शिक्षा का विकास' (1873-74) डायरेक्टर की रिपोर्ट को उद्धृत किया। इस रिपोर्ट में डायरेक्टर ने कहा था कि *"I hope, however, ere, long it may be possible to have a common grammar for both forms of the vernacular (Urdu and Hindi), and convertible scientific terms."*[50] 'हिंदी-प्रदीप' के संपादक बालकृष्ण भट्ट ने फरवरी 1885 ई. की अपनी पत्रिका में इसे स्वीकार किया था। यह दीगर बात है कि 'खड़ी बोली का पद्य' छपने के बाद इसका विरोध करने लगे। खत्री जी ने अपनी मान्यता की पुष्टि के लिए 'हिंदी प्रदीप' से बालकृष्ण भट्ट को उद्धृत किया। ''यह कौन कहता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है? सच पूछो तो उर्दू भी इसी हिंदी का एक रूपांतर है जब हम हिंदुओं ने इसका अनादर कर इसे त्याग दिया तब मुसलमानों ने इसकी दीनता पर दया कर, इसे अपने मुल्क के लिबास और जेरों से आभूषित कर उसका दूसरा नाम उर्दू रक्खा। तात्पर्य यह कि इस नारी का कुल और गोत्र सदा एक ही रहा, समय-समय इसका रंग रूप और भेष अलबत्ता पलटता गया।''[51]

'खड़ी बोली का पद्य' (दूसरा भाग) में खत्री जी अपनी पुरानी मान्यता पर अडिग रहे। इस खंड की भूमिका में भी उन्होंने अपने पुराने मत को दुहराया। दूसरे खंड के प्रकाशन का मकसद स्पष्ट करते हुए अयोध्या प्रसाद खत्री ने लिखा है कि 'खड़ी बोली' के व्याकरण में ब्रजभाषा छंद को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिंदी में *Poetical license* समझना हिंदी वैयाकरण की, मेरी समझ में, भूल है।'

इसी को सर्वसाधारण को दिखलाना और इसपर ध्यान दिलाना, इसः दूसरा भागः का और इसके पहिले भाग का प्रधान उद्देश्य है।"[52] 'खड़ी बोली का पद्य' (दूसरा खंड) छः परिच्छेद में बंटा है। पहले परिच्छेद में मुंशी स्टाइल की एक बारहमासा[53] है। इस बारहमासे के रचनाकार का नाम नहीं लिखा है। दूसरे परिच्छेद में मौलवी स्टाइल में भारतेंदु हरिश्चन्द्र की 'रसा' उपनाम से लिखी कविता, उनकी किताब 'प्रेम तरंग'[54] से ली गई है। तीसरे परिच्छेद में पंडित स्टाइल में श्रीधर पाठक की 16 सितंबर 1887 ई. को 'काशी पत्रिका' में छपी रचना 'जगत सचाई सार'[55] और पंडित अम्बिका दत्त व्यास रचित इकतीस अक्षरवाला कवित्त छंद[56] संकलित है, जो 'भाषा प्रभाकर' से लिया गया है। श्रीधर पाठक और पंडित अम्बिका दत्त व्यास ने उक्त कविताएं 'खड़ी बोली का पद्य' (पहिला भाग) के छपने के बाद रची थी। इसलिए इन रचनाओं को दूसरे खंड में संकलित किया गया है। चौथे परिच्छेद में 'यूरेशियन स्टाइल' (वासोख) की दो रचनाएं शामिल की गई हैं। इसमें दो रचना हैं पहली रचना 'बकिए मजमून'[57] 16 जुलाई 1885 के 'अल्पंच' से ली गई है। (इस रचना को पूरा नहीं छापा गया है। वजह के तौर पर लिखा है कि 'अशलील (अश्लील) होने के कारण संपूर्ण नहीं लिखा गया।') दूसरी रचना 'उर्दू-अंगरेजी की खिचड़ी'[58] 12 फरवरी 1886 ई. के 'अल्पंच' से ली गई है। पाँचवें परिच्छेद में 'यूरोपियन स्टाइल' के अंतर्गत 'अशुद्ध हिंदी'[59] संकलित है। इसके रचनाकार का नाम नहीं लिखा है। साथ ही यह कहाँ से ली गई है - इसकी भी सूचना नहीं है। छठे परिच्छेद में मुतफ़र्कात यानी विविध[60] *(Miscellaneous)* पद्य रचनाएं हैं। इसके रचनाकार का नाम नहीं बताया गया है। 'खड़ी बोली का पद्य' दूसरे भाग के परिशिष्ट में 'मुशायरा'[61] संकलित है।

इनदोनों खंडों की समीक्षा प्रतापनारायण मिश्र ने 15 फरवरी और मार्च, हरिश्चन्द्र संवत 4 यानी 1888 ई. के 'ब्राह्मण' में 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक से लिखी। "लेखक महाशय की मनोगति तो सराहना योग्य है पर साथ ही असंभव भी है। सिवाय फारसी छंद और दो-तीन चाल की लावनियों के और कोई छंद उसमें बनाना भी ऐसा है जैसे किसी कोमलांगी सुंदरी को कोट-बूट पहिनाना। हम आधुनिक

कवियों के शिरोमणि भारतेंदु जी से बढ़के हिंदी भाषा का आग्रही दूसरा न होगा। जब उन्हीं से यह न हो सका तो दूसरों का यत्न निष्फल है। बाँस को चूसने से यदि रस का स्वाद मिल सके तो ईख बनाने का परमेश्वर को क्या काम था।"

"हां उरदू शब्द अधिक न भरके उर्दू के ढंग का-सा मजा हम पा सकते हैं और उर्दू कविताभिमानियों से हम साहंकार कह सकते कि हमारे यहां का काव्य भी कुछ कम नहीं है। यद्यपि कविता के लिए उर्दू बोली है, कवित्व रसिकों को वह भी बारललना के हाव-भाव का मजा दे जाती है, पर कवि होते हैं निरंकुश, उनकी बोली भी स्वच्छंद रहने से अपना पूरा बल दिखा सकती है। जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावण्य कवियों की उस स्वतंत्र भाषा में है जो गृहभाषा, बुंदेलखंडी बैसवाड़ी और अपने ढंग पर लाई गई संस्कृत व फारसी से बन गई है, जिसे चंद से लेके हरिश्चन्द्र तक प्रायः सब कवियों ने आदर दिया है, उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बैठी बोलियों में ला सके। यह किसी कवि के बाप की मजाल नहीं। छोटे-मोटे कवि हम भी है। और नागरी का कुछ दावा भी रखते हैं, पर जो बात हो ही नहीं सकती उसे क्या कहेंगे? बहुतेरे यह कहते हैं कि बृजभाषा की कविता हर एक समझ नहीं सकता। पर उन्हें यह समझना चाहिए कि आपकी बोली ही कौन समझे लेता है। यदि सबकुछ समझना मात्र प्रयोजन है तो सीधी दो गद्य लिखिए। कविता के कर्त्ता और रसिक होना हर एक का काम नहीं है।"

"उन बिचारों की चलती गाड़ी में पत्थर अटकाना जो कविता जानते है। कभी अच्छा न कहेंगे। बृजभाषा भी नागरी देवी की सगी बहिन है, उसका निज स्वत्व दूसरी बहिन को सौंपना सहृदयता के गले पर छुरी फेंकना है। हमारा गौरव जितना इसमें है कि गद्य की भाषा और रक्खें, पद्य की और; उतना एक हो बिलकुल त्याग देने में कदापि नहीं। कोई किसी की इच्छा को रोक नहीं सकता। इस न्याय से जो कविता नहीं जानते वे अपनी बोली चाहे खड़ी रक्खें या कुदावें, पर कवि लोग अपनी प्यार की हुई बोली पर हुकुम चलाके उसकी स्वतंत्रता, मनोहारता को नाश नहीं करने के। जो कविता के समझने की शक्ति नहीं रखते वे सीखने का उद्योग करें। कवियों

को क्या पड़ी है कि किसी के समझाने को अपनी बोली बिगाड़ें।"[62] प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी से लेकर डा. ग्रियर्सन तक सभी भारतेंदु का हवाला देकर यह साबित करना चाहते थे खड़ी बोली कविता रचना असंभव है। हरिश्चन्द्र की बातों का भारतेंदु-मंडल के सदस्य राधाचरण गोस्वामी सरीखे लेखकों के लिए कितना महत्व था, भारतेंदु हरिश्चन्द्र के बारे में राधाचरण गोस्वामी के इस बयान से पता चलता है "उनके लेख ग्रंथ हमको वेद वाक्यवत प्रमाण और मान्य थे। उनको मानो ईश्वर का एकादश अवतार मानते थे। हमारे सब कामों में वह आदर्श थे, उनकी एक-एक बात हमारे लिए उदाहरण थीं"[63] इस बयान से राधाचरण गोस्वामी की अंधभक्ति का पता चलता है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि इतिहास के जिस दौर में बुद्धिवाद, आलोचनात्मक वृत्ति का विकास हो रहा था, उस दौर में हिंदी के बड़े लेखकों में ऐसा भाव कायम था। वेद के वाक्यों पर सनातनी हिंदुओं द्वारा सवाल उठाना जिस प्रकार पाप माना जाता है। उसी प्रकार इन लोगों द्वारा भारतेंदु की बात का प्रतिवाद करना तो दूर शंका करना भी मानो पाप जैसा था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के प्रति इनकी अंधभक्ति का आलम यह था कि भारतेंदु की बात को भी ठीक से नहीं समझ सके थे। इतिहास के हरेक दौर में अंधभक्तों के साथ यही होता है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के जिस कथन के आधार पर राधा चरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, डॉ ग्रियर्सन खड़ी बोली हिंदी में पद्य रचना को 'असंभव' मानते और कहते थे उसपर गौर करना जरूरी है। क्या खुद भारतेंदु ने इसे असंभव कहा था? भारतेंदु ने 1883 ई. में 'हिंदी भाषा' शीर्षक लेख लिखा। ब्रजरत्न दास के मुताबिक इसका दूसरा संस्करण 1890 में खड़गविलास प्रेस पटना से छपा था। इस लेख में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने लिखा है कि "मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊं पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है।"[64] अव्वल तो यह है कि भारतेंदु के चित्तानुसार कविता न ही बनी तो उन्होंने नतीजा निकाल लिया कि ब्रजभाषा में कविता करना उत्तम होता है। खुद से जो काम नहीं हो सका, उसके बारे में नतीजा निकालना अपने आप पर टिप्पणी

है। भारतेंदु ने इसी लेख में 'नई भाषा की कविता' नाम से दो पंक्तियां लिखी--

"भजन करो श्रीकृष्ण का, मिलकर के सब लोग।
सिद्ध होयगा काम सब, छुटैगा सब सोग।।"

इसके बाद भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने लिखा है "अब देखिए यह कैसी भौड़ी कविता है मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी नहीं बनती तो मुझसे सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घमात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती।"[65] भारतेंदु के अंधभक्त इन्हीं पंक्तियों के आधार पर 'खड़ी बोली-पद्य' को असंभव करार दे रहे थे। अंध समर्थकों द्वारा किसी भी विचारक, गुरू या नेता की बातों का ऐसा ही हश्र होता है। अव्वल तो यह कि अंधभक्त अपने 'आराध्य' की बात को आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं देखते। बदलती ऐतिहासिक परिस्थितियों के संदर्भ में उन विचारों का विकास भी नहीं कर पाते हैं। राधाचरण गोस्वामी और प्रताप नारायण मिश्र की तरह श्रीधर पाठक भी भारतेंदु के 'समर्थक' थे। उनके प्रति भक्ति-भाव भी रखते थे। लेकिन उतना नहीं जितना गोस्वामी जी और मिश्र जी रखते थे। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के प्रति श्रीधर पाठक के मन में कैसे भाव थे? इसको जानने के लिए 5-1-1884 ई. को भारतेंदु के नाम श्रीधर पाठक के लिखे खत को देखना जरूरी है।

"हरिश्चन्द्र हरि-चन्द-गुण
उदाहरण-एकत्र
नहिं केवल तुम इन्दु हो,
किंतु भारती मित्र।
विचित्र विधि-कृत्य हो,
अति अद्भुत-मति गेह
नित्य-नित्य शोभित रहौ,
लहौ जगत-नव-नेह
अमृत--सरोवर--हृदय--धर,

हे पियूष-वचनालि।
हे कवि-कुल कमलार्कवर,
हे ग्रीवा-श्रुति-मालि
परम धन्य तुमसे सुजन,
परम धन्य तुअ मित्र।
परम धन्य काशी जहाँ,
तुम सम पुरूष विचित्र।''

आपका यथार्थ गुण वर्णन मेरी शक्ति से बाहर है-यदि आप कहें कि क्यों गुण-वर्णन करते हो तो क्या करूं, अनोखी वस्तु देखकर उसकी प्रशंसा किए बिना रहा नहीं जाता-आपके साथ लिखा-पढ़ी करने की योग्यता तो किचिंतमात्र भी मुझमें नहीं है पर यह देखकर कि बड़े सबकी मनुहार ले लेते हैं, एक अपने निरे बाल्य का 'मनोविनोद' नामक कृति आपके अर्पण करता हूं। आशा है कि ग्रहण होगा।''[66] मौजूदा दौर में ऐसा पत्र कोई युवा रचनाकार किसी बड़े लेखक को लिखेगा तो उसके व्यक्तित्व के बारे में कैसी धारणा बनेगी? बहरहाल, भारतेंदु के प्रति ऐसी भावना रखनेवाले, श्रीधर पाठक ने भारतेंदु के उक्त कथन को ठीक से समझा था। 8 मार्च 1888 ई. को 'हिन्दोस्थान' में श्रीधर पाठक का 'खड़ी हिन्दी कविता के विरोधी' लेख छपा। इस लेख में श्रीधर पाठक ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र के उक्त कथन की भावनाओं को समझते हुए प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी तथा डॉ. ग्रियर्सन सरीखे लोगों की स्थापना का खंडन किया। ''भारतेंदु श्री हरिश्चन्द्र ने उतना श्रम इस कविता पर कदापि नहीं किया जितना ब्रजभाषा पर, नहीं तो इसकी महिमा दिखाना उनके लिए कोई बड़ी बात न थी।''[67] यह लिखने के साथ पाठक जी ने राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र की बात का जवाब देते हुए भारतेंदु के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया। ''यदि एक सतकवि का यह कथन अबाध्य प्रमाण भी माना जाय, तब भी इस प्रकार की कविता विषयक असम्भवता सिद्ध नहीं होती। सामान्य रीति से असम्भवता संसार में बहुधा अलीक बातों ही की कही जाती है। और जबकि हमारे मिश्रजी भी कई एक नियत छंदों में खड़ी हिन्दी कविता का बनना

स्वीकार करते हैं तो -'असंभव' का प्रयोग करना बुद्धिमता के विरूद्ध जंचता है।''[68]

प्रतापनारायण मिश्र गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग रखने को गौरव समझते थे। ऐसा कहकर वे लोग खड़ीबोली की कमी को छिपाते हुए, उसका गौरव साबित करने में लगे थे। दरअसल ये सारे तर्क उर्दू शब्दों से एवं उर्दू काव्य-परंपरा से नहीं जुड़ने के लिए दिए जा रहे थे। 'खड़ी बोली का पद्य' के विरोधियों में एक तर्क समान है। तत्कालीन ब्रजभाषा कविता के साथ खड़ी बोली -पद्य की तुलना-- 'खड़ी बोली का पद्य' के करीब सारे विरोधी करते थे। ऐसी तुलना करने पर ब्रजभाषा कविता की तुलना में खड़ी बोली कविता कमजोर दिखती थी। अव्वल तो यह कि ब्रजभाषा कविता की कसौटी पर खड़ी बोली कविता को परखना, बिलकुल गलत था। ब्रजभाषा कविता के पास करीब पांच-छः सौ वर्षों की परंपरा थी। जबकि खड़ी बोली कविता की शुरूआत हो रही थी। लिहाजा आरंभिक काल में खड़ी बोली कविता ब्रजभाषा कविता की तुलना में कमजोर थी। काबिले गौर है कि खड़ीबोली के दूसरे साहित्यिक रूप उर्दू कविता के साथ, यह तुलना नहीं की जा रही थी, जिसके पास डेढ़-दो सौ वर्षों की विरासत थी। अलबत्ता, उर्दू की साहित्यिक परंपरा से अलगाव कायम रखने के मकसद से ही ब्रजभाषा कविता का समर्थन और खड़ी बोली हिंदी कविता का विरोध किया जा रहा था। उन्नीसवीं सदी में ब्रजभाषा कविता की 'उत्कृष्टता' 'मीठास' और 'कोमलता' को खड़ी बोली हिंदी की कविता में भारतेंदु मंडल के साहित्यकार खोज रहे थे। वैसी 'उत्कृष्टता' 'साहित्यिकता' न पाकर खड़ी बोली कविता को वैसे ही खारिज कर रहे थें, जैसे बीसवीं सदी में गैरदलित साहित्यिकारों ने दलित साहित्य को खारिज किया। प्रतापनारायण मिश्र की ऐसी ही तुलना का जवाब देते हुए श्रीधर पाठक ने लिखा कि ''आधुनिक अर्थात् नवीन हिंदी का जन्म बहुत ही थोड़े काल से हुआ है। और अभी इसमें कविता की चेष्टा भी बहुत कम की गई है। इसकी कविता की अवस्था भी कच्ची और कोमल है और ब्रजभाषा पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हो गयी है। यह अभी वयःसंधि ही में है, पर ब्रजभाषा प्रौढ़ावस्था को डांक 'बुड्ढी नायका' की दशा पर भी आ पहुंची। एक अभी आसन्न कुसुमोद्गम पौधे के रूप में है, दूसरी सारस पक्वफलोडवनत पूर्णावस्थागत

पेड़ के पद को प्राप्त है। इसकी कविता के मार्ग की अभी अच्छी दागबेल भी नहीं पड़ी, उधर सैकड़ों वर्ष से बनी हुई स्वच्छ सुधरी सड़क पर गाड़ियां दौड़ती है।"

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने खड़ी बोली हिंदी में कविता मीठी न बनने का कारण इसकी क्रिया में दीर्घमात्रा का होना कहा था। अयोध्या प्रसाद खत्री को नासिख आतिश की कविताएं पसंद थी। 'खड़ीबोली का पद्य' (भाग-दो) में मौलवी स्टाइल के तहत इन्होंने नासिख और आतिश की कविता शामिल नहीं किया। इसकी जगह भारतेंदु हरिश्चन्द्र की 'रसा' उपनाम से लिखी कविता का शामिल किया। इसकी वजह बताते हुए खत्रीजी ने लिखा है "इससे मुझे सिद्ध करना है कि वह खुद क्रियाओं में दीर्घ मात्रा रहते हुए मौलवी स्टाइल की खड़ी बोली में काव्य करते थे। मौलवी स्टाइल और पंडित स्टाइल में केवल संज्ञा में अंतर रहता है, क्रिया में नहीं।"[70] भारतेंदु 'रसा' उपनाम से खड़ी बोली के एक साहित्यिक रूप उर्दू में कविताएं करते थे लेकिन दूसरे में नहीं कर पाते थे। उर्दू में वजीर और अनीस की कविताएं भारतेंदु को काफी पसंद थी। वह अनीस को अच्छा कवि मानते थे। दरअसल भारतेंदु का काव्य-संस्कार ब्रजभाषा से बना था। इन्हें ब्रजभाषा की बजाय खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखने में काफी समय लगता था। ब्रजभाषा की अपेक्षा ज्यादा परिश्रम करना पड़ता था। भारतेंदु को ब्रजभाषा की तुलना में खड़ी बोली हिंदी में कविता रचने के ऐतिहासिक महत्व का पता नहीं था। अलबत्ता वह ब्रजभाषा कविता को ही हिंदी कविता मानते थे। ऐसी मान्यता ब्रजभाषा समर्थक सभी रचनाकारों की थी। सन् 1882 ई. में शिक्षा के संबंध में 'हंटर कमीशन' का गठन हुआ था। इस कमीशन ने तत्कालीन प्रभावशाली बुद्धिजीवियों की राय मांगी थी। भारतेंदु बीमारी के कारण कमीशन के सामने हाजिर नहीं हो सके थे। लिहाजा, इन्होंने कमीशन द्वारा भेजे गए बहत्तर सवालों का जवाब लिखकर भेजा। इस जवाब में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने बारे में बताया है कि *"I am a sanskrit, Hindi and Urdu poet, and have composed many works in verse and prose."*[71] इस बयान में भारतेंदु ने अपने को संस्कृत, हिंदी और उर्दू का कवि कहा है। भारतेंदु ने 1881 ई. में खड़ी बोली हिंदी में कविता रचने की कोशिश की थी। ब्रजरत्नदास ने

भारतेंदु की जीवनी में इसका जिक्र किया है। कलकत्ता से प्रकाशित 'भारत मित्र' के संपादक पं. छोटूलाल मिश्र को (1 सितंबर 1881 ई. को) खड़ी बोली हिंदी में लिखे दोहे के साथ एक खत भेजा था। "प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्ब करने से इस भाषा में काव्य सुंदर बन सकता है। इस विषय में सर्वसाधारण की अनुमति ज्ञात होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जायेगा। तीन भिन्न-भिन्न छंदों में यह अनुभव ही करने के लिए कि किस छंद में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है। मेरा चित्त इससे संतुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। इस भाषा की क्रियाओं में दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं-कहीं सौकर्य्य के हेतु दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रक्खी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा।"[72] ब्रजरत्न दास के अलावा क्षेमचन्द्र सुमन ने भी 'दिवंगत हिंदी सेवी' (प्रथम खंड) पृष्ठ 152 पर लिखा है कि भारतेंदु ने यह खत 'भारत मित्र' के संपादक को लिखा था। जबकि भवदेव पांडेय ने 'ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का विवाद' शीर्षक आलेख में लिखा है कि भारतेंदु ने सितंबर 1881 ई. में पंजाब से प्रकाशित 'मित्र विलास' के संपादक को यह पत्र और खड़ी बोली हिंदी में तीन दोहा भेजा था।"[73] भवदेव पांडेय ने इसके जिरिए काफी दिलचस्प निष्कर्ष(!) निकाला है। बहरहाल, भारतेंदु के तीन दोहे निम्नलिखित हैं--

बरसा सिर पर आ गई हरी हुई सब भूम।
बागों में झूल पड़े, रहे भ्रमर-गण झूम ॥
करके याद कुटुम्ब की, फिर विदेशी लोग।
बिछड़े प्रीतमवासियों के सिर छाया सोग ॥
खोल छाता चले, लोग सड़क के बीच।
कीचड़ में जुते फंसे, जैसे अध में नीच ॥

भारतेंदु हरिश्चन्द्र क्रिया के दीर्घमात्रा को खड़ी बोली हिंदी कविता में बाधा मानते थे। जबकि कवियों को इसकी छूट होती है। खुद भारतेंदु ने यह छूट ली है।

बहरहाल, एक तरफ भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 1881 ई. में खड़ी बोली हिंदी में दोहा लिखने की कोशिश की। जिसमें इन्हें ब्रजभाषा की अपेक्षा दूना परिश्रम करना पड़ा। आगे खड़ी बोली हिंदी (जिसे वह साधु भाषा' कहते थे) में इन्होंने कविताएं नहीं रची। दूसरी तरफ 1882 ई. में हंटर कमीशन में बयान देते हुए खुद को संस्कृत, हिंदी और उर्दू का कवि बताया। साथ ही यह भी कहा कि इनमें मैंने काफी गद्य-पद्य की रचना की है। क्या वास्तव में भारतेंदु ने काफी हिंदी पद्य और उर्दू गद्य की रचना की है? तथ्य तो यह नहीं कहता है। हंटर कमीशन के इस बयान के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र खड़ी बोली हिंदी में कविता रचने की असफल कोशिश के बाद ब्रजभाषा कविता को ही हिंदी कविता साबित करने लगे। क्या भारतेंदु ब्रजभाषा काव्य और खड़ी बोली हिंदी काव्य के फर्क को नहीं समझ रहे थे? अगर इनके बीच फर्क नहीं था तो 'प्रचलित साधु भाषा' में कविता लिखकर 'भारत मित्र' के संपादक को क्यों भेज रहे थे? ब्रजभाषा समर्थक सभी रचनाकारों ने खुद खड़ीबोली हिंदी में कुछेक कविताएं लिखी, फिर ब्रजभाषा कविता को हिंदी कविता साबित करने लगे थे। हिंदी के एक आलोचक डॉ. शंभुनाथ ने भारतेंदु के उक्त बयान के आधार पर लिखा है कि "उनका खुद को हिंदी के साथ-साथ उर्दू कवि भी कहना सिर्फ फारसी-उर्दू के तत्युगीन दबदबे का ही चिह्न नहीं है, इसका भी संकेत है कि एक कवि की आकांक्षा किस तरह इन भाषाओं के बीच पुल बनने की है। भारतेंदु भाषा को धर्म से नहीं जोड़ते थे। वे हिंदी कविता को उर्दू खड़ीबोली परंपरा से समृद्ध और विकसित करना चाहते थे।"[74] डॉ. शंभुनाथ का यह निष्कर्ष तथ्य से मेल नहीं खाता है। इन्होंने भारतेंदु के उस कथन मात्र से यह संकेत कैसे देख लिया कि 'एक कवि की आकांक्षा किस तरह इन भाषाओं के बीच पुल बनने की है।' क्या भारतेंदु के लेखन में इन भाषाओं के बीच पुल बनने की कोशिश दिखती है? तथ्य तो यह है कि भारतेंदु सायास इन दोनों भाषाओं के बीच दूरी बढ़ा रहे थे; वह भी धर्म के आधार पर। डॉ. शंभुनाथ का मत है कि वे हिंदी कविता को उर्दू खड़ी बोली परंपरा से समृद्ध और विकसित करना चाहते थे। डॉ. शंभुनाथ ने किस तथ्य के आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला है? भारतेंदु की इस 'सदिच्छा' को जानने का आधार क्या है?

खुद भारतेंदु ने कितनी हिंदी कविता रची थी, जिसे वे उर्दू खड़ी बोली परंपरा से समृद्ध और विकसित करना चाहते थे? हिंदी कविता को उर्दू खड़ीबोली परंपरा से जोड़ा जाए, समृद्ध या विकसित किया जाए; क्या ऐसा भारतेंदु ने कहीं लिखा है? क्या इस तरह की चिंता उनके लेखने या भाषण में मिलती है? शंभुनाथ जी ने इसका कोई जिक्र नहीं किया है। दरअसल भारतेंदु के लेखन में ऐसे तथ्य मिलते ही नहीं तो जिक्र कहां से करते? बगैर तथ्य के बढ़ा-चढ़ाकर निष्कर्ष निकालने का यह एक नमूना है। जब इक्कीसवीं सदी में डॉ शंभुनाथ जैसे माक्सवादी आलोचक (!) भारतेंदु के कथन से बिना आधार के ऐसा निष्कर्ष निकाल रहे हैं तो उन्नीसवीं सदी में राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र सरीखे भक्तों के बारे में क्या कहा जाए?

ऐसे ही भारतेंदु भक्तों की अंधश्रद्धा भाव से आजीज होकर अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' पैम्फलेट लिखकर छपवाया तथा विद्वानों -साहित्यप्रेमियों के बीच बांटा। "ब्रजभाषा कविता के पक्षपाती बाबू हरिश्चन्द्र की दुहाई देते हैं इसलिए हरिश्चन्द्र के वचन का खंडन होना आवश्यक है। बाबू हरिश्चन्द्र ईश्वर नहीं थे। उनको शब्दशास्त्र का *philology* का कुछ भी बोध नहीं था। यदि *philology* का ज्ञान होता तो खड़ी बोली पद्य में रचना नहीं हो सक्ती है, ऐसा नहीं कहते । आप लिखते हैं कि 'पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है यह निश्चित हो चुका है, मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाउं पर वह मेरे चित्तानुसार नही बनी, इससे यह निश्चिय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है। मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती तो मुझको सबसे बड़ा यह कारण जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घमात्रा होती है इससे कविता अच्छी नहीं बनती।' यदि दीर्घमात्रा के कारण खड़ी बोली में कविता करने में कठिनता है तो दीर्घ को ह्रस्व कर देना कवियों को *poetical license* बहुत दिनों से हासिल है। दुकान उठा लो मैं घोड़ा न हटाउंगा-- हठ करना दूसरी बात है। दीर्घमात्रा रहते ही उर्दू के कवि पद्य-रचना करते हैं और बाबू हरिश्चन्द्र भी करते थे। इसीलिये बाबू साहब का काव्य अपनी खड़ी बोली का पद्य 'न. 2' में दिया है। उर्दू में वजीर और

अनीस का काव्य बाबू हरिश्चन्द्र को अतिप्रिय था। वह अनीस को अच्छा कवि समझते थे। बाबू साहब अपने हिंदी व्याकरण में लिखते हैं 'वाक्य बनाने में व्याकरण की शुद्धता को छोड़ के मुहाविरे का भी ध्यान आवश्यक है। वाक्य साहित्य और मुहाबिरे से ललित होते हैं। जाति पुरूष और स्त्री दो प्रकार की हैं और हिंदी में नपुंसक जाति के शब्द भी इन्हीं दो जाति में मिला दिये जाते हैं जो हिंदी भाषा में फारसी अंगरेजी इत्यादि भाषा के शब्द गए है उसको कहीं तो हिंदी वालों ने जाति बदल दी है कहीं नहीं बदली है इससे जो ऐसे शब्द आवें जिनकी जाति हिंदी वालों ने न बदली हो तो उन्हें उसी भाषा की जाति के अनुसार बोलना चाहिये।' इसके लिखने से मेरा तात्पर्य है कि बाबू साहब पंडितजी नहीं थे, मुंशी जी थे। आपकी हिंदी में फारसी अरबी के शब्द आये हैं। नूमने के लिये 'यात्रा' से उठाकर कुछ लिख देता हूं। 'आज सुबह सात बजे मेहदावल पहुंचे। सड़क कच्ची है राह में एक नदीं भी उतरनी पड़ती है। उसका नाम आमी है। छः आना पुल का महसूल लगा।' जिस स्टाइल का यह गद्य है उस स्टाइल में खड़ी बोली में पद्य अवश्य हैं। नजीर का कौड़ीनामा बाँचिये। पिंगल और स्टाइल दो भिन्न वस्तु है। माइकल मधुसूदन दत्त ने *Blank verse* अंगरेजी छंद को बंगला में लिखा है। बाबू महेशनारायण ने 'स्वप्न' निराले छंद में लिक्खा है। इसलिये खड़ी बोली की कोई क्षति नहीं है। पंडित जी से मौलवियों ने, संस्कृत पिंगल हिंदी में व्यवहार करने के लिये कोई वाजीनामा या मुचलका नहीं लिखवाया है। पंडित श्रीधर पाठक का यह हिस्सा है।''[75] इतिहास के जिस दौर में भारतेंदु हरिश्चन्द्र की तूती बोलती थी, अयोध्या प्रसाद खत्री ने इनकी मान्यता का खंडन साहसपूर्वक किया। हालांकि खत्री जी की बात पूरी सच नहीं है। इन्होंने भारतेंदु के 'हिंदी व्याकरण और 'यात्रा' से भाषा को उद्धृत कर, इन्हें 'मुंशी हिंदी' का लेखक बताया है। खत्री जी ने जिन पंक्तियों को आधार बनाया है, 'सरयू पार की यात्रा' यात्रा-वृतांत से ली गई है। यह यात्रा-वृतांत 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के फरवरी 1879 ई. में छपा था सवाल उठता है कि 'सरयू पार की यात्रा' की भाषा क्या भारतेंदु के समूचे गद्य में मिलती है? क्या शुरू से लेकर आखिर तक भारतेंदु ऐसी भाषा लिखते थे? इन सवालों के संदर्भ में भारतेंदु के बारे में अयोध्या प्रसाद खत्री ने

बगैर ठीक से विचार किए ऐसी स्थापना दी थी। अयोध्या प्रसाद खत्री की यह स्थापना भारतेंदु के समूचे गद्य की एक-चौथाई से भी कम पर आधारित है। अपने ज्यादातर लेखन में भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 'मुंशी हिंदी' नहीं बल्कि 'पंडित हिंदी' का उपयोग किया है। उस दौर में 'मुंशी हिंदी' 'चद्रकांता' के लेखक देवकीनंदन खत्री लिख रहे थे। 'चंद्रकांता' की अधिक बिक्री की एक वजह इसकी सहज और आमफहम हिंदी थी। भारतेंदु की भाषा के बारे में देवकीनंदन खत्री की क्या राय थी? देवकीनंदन खत्री ने लिखा है कि "यदि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी भाषा को थोड़ा सरल करते तो हमारे भइयों को अपने समाज पर कलंक लगाने की आवश्यकता न पड़ती और स्वाभाविक शब्दों के मेल से बनी हिंदी की पैसिंजर भी मेल बन जाती।"[76]

21 मार्च 1888 ई. को 'हिन्दोस्थान' में प्रतापनारायण मिश्र ने 'खड़ी हिंदी के कविता के पक्षपाती' शीर्षक लेख लिखा। इस आलेख में भारतेंदु के उसी बयान के आधार पर हिंदी-कविता को असंभव बताया। इसके साथ ही इन्होंने लिखा है "अरबी-फारसी के पिंगल में उन्नीस या इक्कीस प्रकार के छंद माने गये हैं। वे ही उर्दू में भी काम आते हैं और (उरूज) में कोई और छंद नहीं है। उर्दू वाले कह सकते हैं कि हम अपने यहाँ के कुल छंदों को अपनी जबान में मौजूं कर सकते हैं पर आर्यों के छंदों -ग्रंथों में 21 क्या 21000 भी छंद गणना की इतिश्री नहीं है और खड़ीबोली में यदि फारसी छंदों के सिवाय कोई छंद बनाइए जो जान पड़े कि हमारी खेलती-कूदती बोली (बृजभाषा) के आगे आपकी खड़ी बोली एक मिनट खड़ी रहेगी; यदि इंसाफ कोई वस्तु है तो उसका ध्यान करके कहिये कि जो भाषा लाखों छंदों में से केवल 21 वा 22 छंदों में काम आ सकती है उस भाषा को कौन बुद्धिमान हिंदी कवि कविता के योग्य कह सकता है।" प्रतापनारायण मिश्र ने इसी लेख में खड़ीबोली को कविता के योग्य न मानते हुए श्रीधर पाठक को चुनौती दिया कि "प्रत्यक्ष को क्या प्रमान! कोई पिंगल लेके बैठिये (कहिए तो छंदार्णव मैं भेज दूँ) और इसी हिन्दोस्थान पत्र में प्रत्येक छंद के उदाहरण आप खड़ी बोली में दे चलिए और मैं बृजभाषा में, फिर देखिए क्या होता है। .....क्या थोड़े से अंगरेजी पढ़े हुए, बृजभाषा न जानने वाले एवं सिखने के लिए थोड़ी सी मिहनत न करके नयी गढ़ंत गढ़ने वाले

एवं काव्यशास्त्र न पढ़के कविता करने वाले उसकी कोई हानि कर सकते हैं? रही खड़ी बोली बह भी बृजभाषा की बहिन ठहरी! उसको अधिकार से कौन हिंदू 'बिमुख' कर सकता है! गद्य मात्र की वह पूर्ण स्वामिनी है। पद्य भी जितने प्रकार के उसमें हो सकते हैं हों! यह तो और भी हमारे लिए अहंकार का विषय है कि दूसरे देशोंवाले केवल एक ही भाषा से गद्य-पद्य दोनों में काम चलाते हैं। हमारे यहाँ एक गद्य की भाषा है, एक पद्य की!!"[77]

प्रतापनारायण मिश्र के आलेख के दो दिन बाद 23 मार्च 1888 ई. के 'हिंदोस्थान' में राधाचरण गोस्वामी का 'खड़ी बोली और ब्रजभाषा कविता' शीर्षक छोटा लेख छपा। इस आलेख में गोस्वामी जी ने लिखा कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा कविता के झगड़े को निबटाने के लिए "हिन्दी भाषा के सब विद्वानों का मत लेना चाहिए। अतएव एक सभा 'कविता विचारिणी सभा' नाम से नियत हो। उसमें हिंदी के सब विद्वान चाहे एक स्थान पर एकत्र होकर निर्णय करें, चाहे कुछ प्रश्न छाप कर के सब विद्वानों के पास भेजे जायँ और एक नियत समय में उनका उत्तर लिया जाय, फिर बहुमत के अनुसार इसका निर्णय हो।"[78] खड़ी बोली के विरूद्ध और ब्रजभाषा के समर्थन में 'नागरी निरादर' के लेखक शिवनाथ शर्मा ने 'ब्रजभाषा और नया पद्य' शीर्षक लेख लिखा, जो 30 मार्च 1888 ई. के 'हिंदोस्थान' में छपा। शिवनाथ शर्मा ने न तो कोई महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया, न कोई नया तर्क दिया। राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र काफी पहले से जो राग अलाप रहे थे, उन्होंने कमोबेश वही अलापा।

इन तीनों लेखकों के लेखों का प्रतिवाद श्रीधर पाठक ने 'खड़ी हिंदी की कविता पर झगड़ा' शीर्षक लेख में किया। यह लेख 3 अप्रैल 1888 ई. को 'हिंदोस्थान' में छपा। "हम आपकी छंद रचना संबंधी युद्ध की मांग को हर्ष पूर्वक स्वीकार करते हैं और इस हिंदोस्थान के रणखेत में संग्राम के हेतु उद्धत हैं। पर याद रहे कि आपको भी ब्रजभाषा में जो छंद हम कहैंगे, बनाने पड़ेंगे, यद्यपि हमारा मत यह है कि जो छंद जिस भाषा में अच्छा बैठे उसी को उस भाषा के लिए उपयुक्त

समझना चाहिए। आपकी समझ में खड़ी हिंदी में 21 वा 22 से अधिक छंद नहीं आ सकते और हम बीड़ा उठाकर अधिक नहीं तो 21 के ऊपर एक बिंदी लगाकर इस भाषा में छंद दिखला सक्ते (सकते) हैं। यदि दोहे देखने हों नागरीदास का 'इश्क चमन' देखिये, चौपाई मैं दिखा दूँगा। सिवा इनके संस्कृत के और अंगरेजी के अनेकों (अनेक) छंद जिनका ब्रजभाषा में त्रिकाल में भी निर्वाह नहीं हो सक्ता; इसमें दिखलाये जायंगे। पहले तो ऋतुसंहार का अनुवाद जो कल के हिन्दोस्थान में छापा जायगा वंशस्थ और मालिनी वृत्त में पढ़िये और कृपा करके इसके प्रत्येक श्लोक को उसी के वृत्त में ब्रजभाषा में लिखकर दिखाइये तथा खड़ी बोली हिंदी के उस गीत को जो 'एक अनोखे सैलानी की अनोखी कहानी' से उद्धृत होकर 3 फरवरी के हिंदोस्थान में छपा है, उसी के छंद में बृजभाषा में कीजिए। संभव है आप कर सकें, पर उपयुक्त न होगा। इसी प्रकार हिंदी में यद्यपि श्रम करने से चौपाई, सवैया आदि छंद दिखलाये जा सकते हैं पर वे उतने अच्छे न लगेंगे जितने चौबोला, लावणी, दोहा, तोमर, पवंगम इत्यादि।" राधाचरण गोस्वामी की 'कविता विचारिणी सभा' के संबंध में टिप्पणी करते हुए पाठक जी ने इसी आलेख में कहा कि "खड़ी हिंदी पद्य के पक्षवालों को यह अच्छी तरह स्वीकृत है। पर पहले तो यह सोच लेना चाहिए कि सभा का परिणाम क्या होगा? निःसंदेह सभा इतना कह सकेगी और निश्चित भी कर सकेगी कि अमुक भाषा से अधिक मीठी है। पर यह सहस्त्र सभाओं की सामर्थ नहीं कि किसी भाषा में कविता बनने का निषेध कर सके और लोगों की प्रकृति प्रेरित प्रवृति को रोक सके। सभा की क्या आवश्यकता है? हम खड़ी हिंदी की कविता की तारीफ करना लीजिये आप ही के कहने से बंद किए देते हैं। आपकी समझ में खड़ी हिंदी मधुर कविता के उपयुक्त नहीं है। न सही। हमारी समझ में तो है। पर कोई यह न समझे की सभा के प्रस्ताव से डर कर हम ऐसा कहते हैं। यह तो केवल प्रस्ताव पर हमने अपना मत प्रकाश कर दिया है।"[79] श्रीधर पाठक ने ऋतुसंहार के एक हिस्से का 'ग्रीष्म वर्णन' शीर्षक से अनुवाद किया। यह अनुवाद 'वंशस्थ वृत्त' और 'मालिनी वृत्त' ने 'हिंदोस्थान' (4 अप्रैल, 1888 ई.) में छपा। नोट करने की बात है कि श्रीधर पाठक ने प्रतापनारायण मिश्र की चुनौती को स्वीकारते हुए उन छंदों में

काव्य रचना करना स्वीकार किया है। मिश्र जी से भी कुछ छंदों में ब्रजभाषा-काव्य रचने की मांग की है। साथ ही यह भी कहा है कि जो छंद जिस भाषा में अच्छा बैठे उसी को उस भाषा के लिए उपयुक्त समझना चाहिए। यहाँ पाठक जी की संतुलित दृष्टि दिखती है।

राधाचरण गोस्वामी की 'कविता विचारिणी सभा' संबंधी प्रस्ताव को खड़ी बोली पद्य-आंदोलन के नेता अयोध्या प्रसाद खत्री ने भी स्वीकार किया। लेकिन खत्री जी की शर्त्त थी कि सभा से पहले मुझे अपनी हजार-पांच सौ किताबें पश्चिमोत्तर प्रांत के विद्वानों को बांट लेने दीजिए। राधाचरण गोस्वामी ने 11 अप्रैल 1888 ई. को 'हिंदोस्थान' में 'खड़ी बोली की कविता' लेख लिखकर अयोध्या प्रसाद खत्री की कविता विचारिणी सभा से पहले किताब बांटने के प्रस्ताव को कहा कि "यह बहाना मात्र है। विद्वानों को यह कुछ कठिन समस्या नहीं है, जो बिना पुस्तक के निर्णय न कर सकें।"[80] बगैर दूसरे पक्ष पक्ष को जाने विद्वानों से निर्णय कराने की मांग, गोस्वामी जी की मंशा को उजागर करती है। डॉ. अजय तिवारी ने खड़ीबोली-कविता और ब्रजभाषा-कविता विवाद के बाद 'कविता विचारिणी सभा' संबंधी प्रस्ताव वाले उद्धरण के आधार पर इसमें 'जनतांत्रिक स्वभाव' देखा है। डॉ. तिवारी ने लिखा है कि "सार्वजनिक महत्त्व के विषयों पर व्यक्तिगत आग्रह आरोपित न करके बहुमत के अनुसार निर्णय का सुझाव देता (देना) आज के व्यक्तिवादी युग में अविश्वसनीय-सा हो गया है।"[81]

यह कैसा जनतांत्रिक स्वभाव है जिसमें दूसरे पक्ष को, पंचों से अपनी बात कहने के आग्रह को बहाना बताकर रोकने की सिफारिश की जा रही थी? 'कविता विचारिणी सभा' के पंच अगर खत्री जी की किताब यदि नहीं देखते-परखते तो इस विषय पर क्या निष्पक्ष निर्णय कर पाते? क्या यह बहुमत द्वारा अपने पक्ष में निर्णय कराने की, राधाचरण गोस्वामी की चाल नहीं थी? लिहाजा अजय तिवारी की मान्यता उन्नीसवीं सदी में हुए उस विवाद की जटिलता को नहीं समझने का नतीजा है। यह दीगर बात है कि 'कविता विचारिणी सभा' का प्रस्ताव धरा का धरा रह गया। ऐसी सभा का गठन नहीं हो सका। इतिहास में खड़ी बोली कविता के समर्थकों

के पक्ष पर मुहर लगा दिया।

बहरहाल, 'खड़ीबोली की कविता' (11 अप्रैल 1888 ई.) के बाद राधाचरण गोस्वामी ने इस वाद-विवाद से अपने को अलग कर लिया। इस दौरान राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रूद्र प्रसाद 'रूद्र' और केशवराम भट्ट ने खड़ीबोली पद्य का विरोध किया। इन लेखकों ने ब्रजभाषा के समर्थन और खड़ीबोली के विरोध में आवाज जारी रखी। लेकिन इन लोगों ने खड़ीबोली के विरोध और ब्रजभाषा के समर्थन में कोई नया तर्क नहीं दिया। राधाचरण गोस्वामी के बाद प्रतापनारायण मिश्र खड़ीबोली कविता के सबसे बड़े विरोधी थे। वे भारतेंदु हरिश्चन्द्र का हवाला दे कर, खड़ीबोली पद्य का विरोध करते थे। भारतेंदु की मृत्यु के बाद आहत होकर प्रतापनारायण मिश्र ने कई कविताएं लिखीं। भारतेंदु की मृत्यु पर लिखी गई इनकी ज्यादातर कविताएं ब्रजभाषा में हैं लेकिन एक कविता खड़ीबोली हिंदी में है।

"श्री हरिश्चन्द्र के बिना चैन नहि आता।
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहि जाता।।
दुरभाग्य ने अपने यों ही रक्खा क्या था।
विद्या बल वैभव कुछ भी नहीं रहा था।।

.....

हा हा सो भी तू देख न सका विधाता।
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहि जाता।।
प्रिय भारतेंदु की अभी अवस्था क्या थी?
क्या हुआ हाय रे हमको आशा क्या थी।।
अपना जीवन भी हाय हमें नहीं भाता!
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहि जाता।।
हा! जगदीश्वर हम नहीं जानते क्या हैं?
क्यों आर्य देश पर क्रोध तुझे इतना है।।
भारत भक्तों को शीघ्र बुला लेता है।
अच्छा! स्वीकृत है! जो तेरी इच्छा है।।

हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहि जाता।।
जिस समय स्मरण उसके चरित्र आते हैं।
सब ज्ञान ध्यान एक साथ भूल जाते हैं।।
जी मैं 'प्रताप' के शोक यह नहीं समाता।
हा! हन्त! हन्त! यह दुःख सहा नहि जाता।।"[82]

भारतेंदु-मंडल के महत्वपूर्ण सदस्य, 'हिंदी प्रदीप' के संपादक बालकृष्ण भट्ट ने जनवरी-फरवरी-मार्च 1888 ई. के 'हिंदी प्रदीप' में 'खड़ीबोली का पद्य' शीर्षक लेख लिखा। " ..... अब रहा खड़ीबोली के गद्य और पद्य के संबंध में सो गद्य चाही (चाहे) जैसी भाषा का देवनागरी अक्षर में लिखा हो मैं सबको हिंदी ही समझूंगा हमारी गद्य भाषा जहां तक और जैसे बढ़ै सब हमें स्वीकृत है उत्तम भावों का प्रकाशक कोई लेख होगा पढ़कर या सुनकर प्रसन्न होंगे, हिंदी भाषा के भांडार के अंतर्गत उसे करेंगे निकृष्ट या सामान्य होगा मौन साधे रहेंगे--पर अपनी पद्यमयी सरस्वती को मैली नहीं किया चाहते--'सूर दास की काली कामरी चढै न दूजो रंग।" पद्य रचना सरस्वती को यवनी का संपर्क या साथ न करा के जिम (जिस) रंग में वह रंगी है वही उसे भाता है। .....बाबू अयोध्या प्रसाद को खड़ी बोली का पद्य रुचता है तब हमारे लिए उनका उत्साह भंग करना महापाप कर्म है किंतु पुरानी रसीली कबिता (कविता) के प्रेम परवश हो उर्दू के ढंग की रूखी और फीकी खड़ीबोली की कविता पर मन मधुप लुभाता ही नहीं तो क्या किया जाय।"

बालकृष्ण भट्ट की सबसे बड़ी चिंता थी कि पद्यमयी सरस्वती मैली न हो। पद्यमयी सरस्वती मैली कैसे होगी? यावनी के संपर्क से। 'खड़ीबोली का पद्य' के संपादक अयोध्या प्रसाद खत्री के लिए 'यावनी का संपर्क' कोई समस्या नहीं थी। खत्री जी की 'मुंशी हिन्दी' में आमफहम यावनी शब्दों के प्रयोग पर बल दिया गया था। भाषा-विषयक दृष्टिकोण के इसी फ़र्क के कारण 'खड़ीबोली का पद्य' का विरोध हो रहा था। तमाम विरोधों के बावजूद अयोध्या प्रसाद खत्री बार-बार विद्वानों को 'खड़ी बोली का पद्य' की जरूरत समझाते रहे। बार-बार पत्र लिखकर उनकी राय जानने की कोशिश करते रहे। इसी क्रम में डॉ. ग्रियर्सन द्वारा एक बार मत स्पष्ट कर

देने के बावजूद, खत्री जी ने पुनर्विचार करने के लिए 'खड़ीबोली का पद्य' (दूसरा भाग) भेजा और उनकी राय मांगी। इसके जवाब में 6 फरवरी 1890 ई. को गया (बिहार) से डॉ. ग्रियर्सन ने खत्री जी को एक खत लिखा।

"Dear Sir, I have recieved a copy of your Khari Boli Ka Padya. It is a very nicely printed, but I regret that I Cannot agree so much labour and money have been spent upon on impossible task."[83]

बावजूद इसके खत्री जी ने डॉ. ग्रियर्सन को अपना पक्ष समझाने के लिए सामग्री भेजना जारी रखा। 22 फरवरी 1890 ई. को डॉ. ग्रियर्सन ने आगे से ऐसी सामग्री नहीं भेजने की गुजारिश की। *"I must ask you not to trouble to send me any more papers & c about Khari Boli, my mind is quite made up on the subject."*[84]

उन्नीसवीं सदी में जब हिंदी के रचनाकार उर्दू के खिलाफ रचनाएं कर रहे थे, खत्री जी द्वारा कविता के जरिए हिंदी-उर्दू को करीब लाने की कोशिश, तत्कालीन हिंदी लेखकों को पसंद नहीं आई। खत्री जी के समर्थन में खड़े श्रीधर पाठक भी खत्री जी की इस भाषा-नीति से सहमत नहीं थे। पाठक जी ने हिंदी के पक्ष में 'हिंदी बिचारी का बारहमासा', 'हिंदी का आर्त्तनाद, गजल दोयम, गजल अव्वल, कविताएं लिखी। इन कविताओं में उर्दू विरोधी स्वर है। पाठक जी खत्री जी की 'पंडित स्टाइल' के रचनाकार थे। खड़ीबोली कविता को उर्दू-फारसी से बचाने की चिंता इनको शुरू से आखिर तक रही। उन्नीसवीं सदी के साहित्यिक नेता, अयोध्या प्रसाद खत्री के मकसद को समझे बगैर उनका विरोध करते रहे। आज यह कहने की जरूरत नहीं है कि उस दौर में खत्री जी सही रास्ते पर चल रहे थे या उनके विरोधी? खत्री जी की भाषा-नीति एवं 'खड़ीबोली का पद्य' के विरोधी साहित्यकारों की सामाजिक हैसियत खत्री जी से काफी ज्यादा थी। इन सबके विरोधों के बावजूद खत्री जी शुरु से आखिर तक अपने मत पर डटे रहे।

संदर्भ-सूची

1."घोड़े पर अपने चढ़ के जो आता हूँ मैं,
करतब जो है सो सब दिखाता हूँ मैं,
उस चाहनेवाले ने चाहा तो अभी
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं।
.....
खत्री स्मारक ग्रंथ-पृष्ठ-120-123

2. हाय! पीड़ित न रहे, जी मेरा किस भाँत निदान
हृदय जाय ददर क्यों न निकलने प' हो प्रान।
.....
खत्री स्मारक गंथ-166-169

3. 'चंद कवि' हिंदी-साहित्य में चंदवरदाई नाम से प्रसिद्ध हैं।

4. खत्री स्मारक ग्रंथ-116

5. वही पृष्ठ

6. हिंदी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-288-289

7. वही, पृष्ठ-289

8. वही, पृष्ठ-290

9. वही, पृष्ठ-290

10. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-117

11. वही, पृष्ठ-117-118

12. खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-119

13. वही, पृष्ठ-115

14. अयोध्या प्रसाद खत्री -रामनिरंजन परिमलेंदु, साहित्य अकादमी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृष्ठ-47

15. खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-113-115

16. वही, पृष्ठ-68

17. वर्तमान साहित्य, शताब्दी आलोचना पर एकाग्र अंक-2 में, भवदेव पांडेय द्वारा उद्धृत; पृष्ठ-3

18. रस्साकशी-वीरभारत तलवार, सारांश प्रकाशन-2002, पृष्ठ-370-371

19. भारतेंदु काल के भूले बिसरे कवि और उनका काव्य-डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु, नागरी प्रचारिणी

सभा, वाराणसी-2002, पृष्ठ-310

20. भारतेंदु काल के भूले-बिसरे कवि और उनका काव्य, पृष्ठ-311

21. वही, पृष्ठ-311-312

22. वही, पृष्ठ-312-313

23. खड़ी बोली का आंदोलन-शितिकंठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1956, पृष्ठ-140 पर उद्धृत

24. भारतेंदु-समग्र, संपादन-हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशंस प्रा. लि. वाराणसी, 2002; पृष्ठ-1028

25. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-85

26. भारतेंदु-मंडल के प्रमुख रचनाकार, राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ संपादक-कर्मेन्दु शिशिर, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद-1990; पृष्ठ-160-161

27. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-66-67

28. वही, पृष्ठ-67

29. भारतेंदु-समग्र, संपादन-हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशंस प्रा. लि. वाराणसी, 2002; पृष्ठ-1049

30. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-65

31. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृष्ठ-162-163

32. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-71-72

33. वही, पृष्ठ-72

34. वही, पृष्ठ-74

35. वही, पृष्ठ-74-75

36. रस्साकशी, पृष्ठ-78 पर उद्धृत

37. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृष्ठ-18

38. रस्साकशी, पृष्ठ 78 पर उद्धृत

39. वही, पृष्ठ-316

40. भारतेंदु युग के भूले-बिसरे कवि और उनका काव्य, पृष्ठ-383 पर उद्धृत।

41. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ; पृष्ठ-271

42. भारतेंदु युग के भूले-बिसरे कवि और उनका काव्य, पृष्ठ-316 पर उद्धृत।

43. वही, पृष्ठ -316 पर उद्धृत

44. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-271

45. रस्साकशी; पृष्ठ-206

46. अयोध्या प्रसाद खत्री-रामनिरंजन परिमलेंदु, साहित्य अकादमी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003; पृष्ठ-99

47. वही, पृष्ठ-100

48. वही, पृष्ठ-39

49. प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, भारतीय प्रकाशन संस्थान,24/4855 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण-2001, पृष्ठ-55

50. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रथ, पृष्ठ-268

51. वही, पृष्ठ-266

52. वही, पृष्ठ-265

53. अषाढ़ आया यह पहिला मास वसति

.....

.....

सो मुझको हरने यह पहिले दिखाई।

54. तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है

जो झलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है।

55. कहो न प्यारे मुझसे ऐसा-झूठा है यह सब संसार,

.....

.....

तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचाई सार।

56. अमृत के रस की भरी सी उस मुरली को कब प्यारे,

.....

दरस दिखावेगा?

57. साथ हर सुबह को यों होता था हम दोनों का

.....

दिल दुखाना भी नहीं कास्ट में इनकी है गुनाह।

58. क्यों नन हों ब्लैक जेर मशके ह्वाइट नाउ ऐ डेज?

.....

.....

मैं आया पढ़ने-लिखने को तेरी ब्यूटी ने मुझे सताया है।

59. ध्यान में जिस दम नई तहजीब को लाटा है हम

.....

.....

पंच साहब हाल तो यह है जो फर्माटा है हम।

60. सैर खाब अजतसीफ अखर हुसेन

.....

.....

खाब ही खाब है सब दीदए गफलत खोलो।

61. गल्ला कटै लगा है कि जो हो सो है

.....

.....

भूखन जान गँवाई।

62. प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, पृष्ठ-55

63. राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, पृष्ठ-20

64. भारतेंदु समग्र, पृष्ठ-1049

65. वही, पृष्ठ-1050

66. श्रीधर पाठक ग्रंथावली, संपादक-पद्यधर पाठक, राजस्थानी ग्रंथाकार सोटती गेट, जोधपुर, राजस्थान, प्रथम संस्करण, 1996, खंड-3; पृष्ठ-296-297

67. वही, पृष्ठ-350

68. वही, पृष्ठ--350

69. वही, पृष्ठ-351

70. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-288

71. भारतेंदु समग्र, पृष्ठ-1054

72. भारतेंदु हरिश्चन्द्रःएक व्यक्तित्व चित्र-ज्ञानचंद जैन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम

संस्करण 2004, पृष्ठ-97 पर उद्धृत

73. वर्तमान साहित्य, (शताब्दी आलोचना पर एकाग्र) संपादक-संयोजक-अरविंद त्रिपाठी, खंड-2, पृष्ठ-5

74. मित्र-संपादक-मिथिलेश्वर, अंक तीन(अक्तूबर-दिसंबर 2004), आरा, बिहार, पृष्ठ-30

75. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-86-87

76. रस्साकशी, पृष्ठ-77 पर उद्धृत

77. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-78,79,80

78. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृष्ठ-167

79. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, 88 एवं 91

80. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृष्ठ-168

81. वर्त्तमान साहित्य (शताब्दी कविता विशेषांक) मई-जून 2000, संयोजक-संपादक-लीलाधर मंडलोई, पृष्ठ-224

82. प्रतापनारायण मिश्र रचनावली, संपादक-चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, खण्ड-1, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-2001; पृष्ठ-239

83. अयोध्या प्रसाद खत्री-स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ-86

84. वही, पृष्ठ-86

अध्याय-तीन

खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन में अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका

अध्याय-तीन

खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन में अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका

"हिंदी के हृदय में खड़ीबोली की कविता का हार प्रभात की उज्ज्वल किरणों से खूब ही चमक उठा है..... ।"

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ('परिमल' की भूमिका से)

"अब ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन-संग्राम का युग बीत गया, उनदिनों मैं साहित्य का ककहरा भी नहीं जानता था। उस सुकुमार मा के गर्भ से जो यह ओजस्विनी कन्या पैदा हुई है, आज सर्वत्र इसी की छटा है, इसकी वाणी में विद्युत् है। हिंदी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कण्ठ फूट गया, अस्फुट अंग कट-छंट गए, उनकी अस्पष्टता में एक स्पष्ट स्वरूप की झलक आ गई, वक्ष विशाल तथा उन्नत हो गया, पदों की चंचलता दृष्टि में आ गई; वह विपुल विस्तृत हो गई; हृदय में नवीन भावनाएं नवीन कल्पनाएं उठने लगी; ज्ञान की परिधि बढ़ गई, चारों दिशाओं में त्रिविध समीर के झोंके उसके चित्त को रोमांचित करने लगे, उसे चाँद में नवीन सौन्दर्य, मेघ में नवीन गर्जन सुनाई देने लगा..... ।"

सुमित्रानंदन पंत ('पल्लव' की भूमिका से)

'पल्लव' और 'परिमल' के दौर में खड़ीबोली हिंदी-कविता स्थापित हो गई। इस दौर को देखने पर इसके पहले का संघर्ष नहीं दिखता है। लेकिन 'पल्लव' और 'परिमल' के दौर के पहले खड़ीबोली कविता को स्थापित करने की लंबी कोशिश हुई। इस लंबी कोशिश की बुनियाद अयोध्या प्रसाद खत्री ने रखी। यह ऐहिसिक विडंबना है कि जिन लोगों ने खड़ीबोली कविता को सराहा, उन्होंने इस आंदोलन के प्रवर्त्तक के महत्व पर विचार नहीं किया। कुछ लोगों ने विचार किया भी तो

व्यंग्यपूर्वक। अयोध्या प्रसाद खत्री के बारे में इस तरह के विचार उनके जीवनकाल में ही आने शुरू हो गए थे। बाबू श्यामसुंदर दास सरीखे लेखकों ने खत्री जी के अवदान को कभी स्वीकार नहीं किया। 'खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन' की चर्चा करते हुए खत्री जी की चर्चा नहीं करना, इनके साहित्यिक अवदान को स्वीकार नहीं करना, हिंदी-आलोचना की सीमा और संकीर्णता को बताता है।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' का संपादन कर ब्रजभाषा कविता की जगह हिंदी कविता को स्थापित करने की कोशिश की। खत्री जी द्वारा संपादित यह किताब उन्नीसवीं सदी के साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद किताब बनी। यह संभव नहीं है कि कोई जागरूक साहित्यकार खड़ी-बोली-पद्य आंदोलन की शुरूआत करनेवाले अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका से बेखबर हो। बाबू श्यामसुंदर दास ने जनवरी 1901 ई. के 'सरस्वती' में खड़ी बोली-पद्य की जरूरत पर बल देते हुए लिखा - "अभी तक लोगों का ध्यान हिंदी पद्य की ओर बहुत कम हुआ है। हिंदी पद्य से हमारा आशय उस पद्य से है जो आजकल की हिंदी में लिखा हो और न कि प्राचीन ब्रजभाषा में, ब्रजभाषा की कविता चाहे मधुर हो पर यह बात हिंदी भाषा के लिए बड़ी निंदा की है और उसके एक बड़े भारी अभाव को दिखाती है कि गद्य तो एक प्रकार की भाषा जो उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न हो संपन्न हुई, लिखा जाय और पद्य पुरानी भाषा में।" कहने की जरूरत नहीं है कि बाबू श्याम सुंदर दास ने उन्हीं बातों को दुहराया है जिसे खत्री जी काफी पहले कह चुके थे। श्यामसुंदर दास की बात से लगता है कि इनके पहले किसी ने हिंदी कविता के लिए कोई कोशिश नहीं की है। अपने लेख में श्यामसुंदर दास ने न तो 'खड़ी बोली का पद्य की चर्चा की है, न अयोध्या प्रसाद खत्री की।

बाबू श्यामसुंदर दास ने अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका को कभी स्वीकार नहीं किया। 'काशी-नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना के बाद श्यामसुंदर दास इसके मंत्री बनाये गए। इसके गृहप्रवेश के समय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने सर डिग्गस लाटूश का स्वागत "धनि भाग आज या भवन में नाथ तिहारे पग पड़े' कहकर स्वागत किया। इसके बाद पंडित मदनमोहन मालवीय ने अंग्रेजी में भाषण

किया। मालवीय जी ने इस भाषण में सर डिग्गस लाटूश को 'गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ' कहा था। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने खत्री के निधन के बाद 'बाबू अयोध्या प्रसाद के संस्मरण' समालोचक (अगस्त 1905 ई.) में लिखा। इसमें गुलेरी जी ने विस्तारपूर्वक कई पहलुओं का उल्लेख किया है।[1] गृहप्रवेश के मौके पर अयोध्या प्रसाद खत्री भी उपस्थित थे। दूसरे दिन, बातचीत के दौरान खत्री जी ने गुलेरी जी से कहा कि "एड्रेस गंवारी बोली में क्यों दिया गया, यदि वह खड़ी बोली में होता तो हम मुसलमानों को भी अनुकूल कर सकते।' आगे खत्री जी ने कहा कि 'जबतक यह गंवारी हमारे सभ्य साहित्य का पल्ला न छोड़ेगी तबतक इसकी उन्नति न होगी।' खत्री जी की बात लिखने के बाद चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने लिखा है कि "बाबू साहब को उन कठिनाईयों का ज्ञान न था जो खड़ी बोली में एड्रेस देने पर सभा को पड़ती, क्योंकि सबके सामने पालिसी में 'सरल भाषा के पक्षपाती' बननेवालों को निखालिस उर्दू शब्द काम में लेना (लेने) पड़ते और काशी के नाम को कुछ गौरव से रहित करना पड़ता"[2]

चन्द्रधरशर्मा 'गुलेरी' के लिखे संस्मरण से दो महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है। एक, सार्वजनिक जीवन के हरेक पहलू से अयोध्या प्रसाद खत्री ब्रजभाषा को बेदखल करना चाहते थे। इसके जरिए वे मुसलमानों को भी करीब लाना चाहते थे। हिंदी-उर्दू को एक-दूसरे के निकट लाना चाहते थे। दो, अयोध्या प्रसाद खत्री की जो चिंता थी, वह 'नागरी प्रचारिणी सभा' वालों की चिंता नहीं थी। खत्री जी खड़ीबोली का प्रयोग करके मुसलमानों को साथ लाना चाहते थे जबकि 'नागरी प्रचारिणी सभा' वाले मुसलमानों और उर्दू से बचना चाहते थे। सरकार के समक्ष, सैद्धांतिक तौर पर 'नागरी प्रचारिणी सभा' सरल भाषा का पक्ष लेती थी। जबकि व्यवहार में सरल हिंदी का प्रयोग इसलिए नहीं करती थी कि उर्दू शब्दों का भी प्रयोग करना पड़ेगा। काशी जैसी पवित्र जगह में नागरी जैसी पवित्र भाषा यावनी शब्द (उर्दू) के प्रयोग मात्र से अपवित्र जो हो जाती! बाबू श्यामसुंदर दास, यहाँ राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र की कतार में खड़े दिखते हैं। 'भारतेंदु मंडल' की भाषा-नीति से 'नागरी प्रचारिणी सभा' की भाषा-नीति मिलती-जुलती है। दोनों उर्दू-फारसी से अपनी नागरी

को बचाना चाहते हैं। अंतर इतना ही है कि भारतेंदु मंडल के साहित्यकार खड़ीबोली कविता का विरोध कर रहे थे। नागरी-प्रचारिणी सभा वाले इसका विरोध नहीं करते थे। दरअसल, यह अयोध्या प्रसाद खत्री के आंदोलन का प्रभाव था, जिससे सबको खड़ी बोली-कविता की ऐतिहासिक जरूरत का अहसास हो गया था। लेकिन श्यामसुंदर दास जैसे लोग इसका वाजिब श्रेय खत्री जी को देना नहीं चाहते थे।

मार्च 1901 ई. में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' ने खड़ी बोली कविता को महारानी विक्टोरिया के राज्य काल की एक बड़ी घटना कहा। इस आलेख में खड़ीबोली-आंदोलन का विस्तृत विवेचन किया गया। इसमें अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका की कोई चर्चा नहीं की गई खत्री जी के आंदोलन के प्रखर समर्थक श्रीधर पाठक की भूमिका का जिक्र करके पत्रिका ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। अयोध्या प्रसाद खत्री को नागरी प्रचारिणी पत्रिका का यह रवैया बुरा लगा। इसका इजहार करते हुए इन्होंने श्रीधर पाठक को एक पत्र लिखा। पत्र में इसकी वजह बताते हुए खत्री जी ने लिख कि "सभा वालों ने खड़ी बोली कविता में आपको सम्मानपूर्वक आसन दिया है परंतु जहाँ आप हैं वहीं आपका सेवक मैं भी हूँ। परंतु मेरा नाम नहीं लिखा गया। इसका कारण यह है कि मैंने तो 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' लिखी थी और आपने हरिश्चन्द्राष्टक की 1000 प्रति बांटी थी।"[3] नागरी प्रचारिणी पत्रिका का रवैया खत्री जी को बुरा लगना स्वाभाविक था। इन्होंने अपने खर्च से 'खड़ी बोली का पद्य' छपवाकर बंटवाया था। खड़ी बोली में कविता रचने के लिए इनाम की घोषणा की थी। फिर भी 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में इनके नाम का जिक्र करना वाजिब नहीं समझा गया। खत्री जी के आंदोलन के दौरान खड़ी बोली कविता की महत्ता पर सवाल उठाए गए और जब इसकी महत्ता सिद्ध हो गई तो इस आंदोलन का श्रेय इन्हें नहीं देने की मुहिम शुरू हुई। इस मुहिम की शुरूआत बाबू श्यामसुंदर दास ने जनवरी 1901 ई. के 'सरस्वती' से की, जो काफी बाद तक चलती रही। बाद के ज्यादातर विद्वानों ने या तो इनकी आंदोलन एवं भूमिका पर व्यंग्य किया या इनके महत्व को कम करके आंका।

अयोध्या प्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक 'खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन' में साथ-साथ सक्रिय थे। फिर श्रीधर पाठक की भूमिका को स्वीकार करनेवाले लोग खत्री जी की उपेक्षा क्यों करते थे? वास्तव में खत्री जी ने ही इसे आंदोलन का रूप दिया था। वे इस आंदोलन के नेता भी थे। उनकी उपेक्षा के कई कारण हैं। एक, अयोध्या प्रसाद खत्री हिंदी-उर्दू को एक करने की सिफारिश कर रहे थे। श्रीधर पाठक ऐसा नहीं कर रहे थे। खत्री जी जिस 'मुंशी हिंदी' को आदर्श हिंदी कहते थे, उसमें उर्दू-फारसी शब्दों से परहेज नहीं था। बल्कि ऐसे आमफहम शब्दों का प्रयोग निहायत जरूरी था। ऐसे शब्दों के प्रयोग से तत्कालीन साहित्यकारों की धार्मिक भावनाएं आहत होती थी। वे लोग इन शब्दों से बचने की पूरी कोशिश करते थे। श्रीधर पाठक संस्कृतनिष्ठ हिंदी लिखते थे। इसी की सिफारिश भी करते थे। ऐसे में, श्रीधर पाठक की भाषा-नीति से इन्हें परेशानी नहीं थी। दो, अयोध्या प्रसाद खत्री ब्रजभाषा को 'गँवारी बोली' कहते थे। ब्रजभाषा की कविता को हिंदी कविता मानने से इंकार करते थे। खड़ी बोली हिंदी कविता को ब्रजभाषा की परंपरा से जोड़ने का विरोध करते थे। इसके साथ खड़ी बोली उर्दू कविता की विरासत से खड़ी बोली हिंदी कविता को जोड़ने पर बल देते थे। जबकि श्रीधर पाठक खड़ी बोली हिंदी कविता के साथ-साथ ब्रजभाषा में कविता करते थे। पाठक जी ब्रजभाषा को न तो 'गंवारी बोली' मानते थे, न ही इसे खड़ीबोली कविता की विरासत मानने से इंकार करते थे। तीन, तत्कालीन साहित्यकारों के पूज्य भारतेंदु हरिश्चन्द्र के प्रति अयोध्या प्रसाद खत्री भक्ति-भाव नहीं रखते थे। बल्कि इनकी तीखी आलोचना करने से भी नहीं कतराते थे। श्रीधर पाठक भारतेंदु के प्रति भक्ति-भाव रखते थे। भारतेंदु के निधन के बाद पाठक जी ने 'हरिश्चन्द्राष्टक' की एक हजार प्रतियां छपवाकर बांटी थी। इस लिहाज से भी वे इनके कोपभाजन नहीं थे। श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में जितनी कविताएं लिखी हैं, सब संस्कृतनिष्ठ हिंदी (जिसे खत्री जी 'पंडित हिंदी' कहते थे) में लिखी गई हैं। श्रीध ार पाठक ने भारतेंदु की मृत्यु के बाद 'हरिश्चन्द्राष्टक' कविता लिखी। इसकी भाषा तो हिंदी लगती ही नहीं है। इसमें हिंदी और संस्कृत का कोई भेद नहीं दिखता है। ऐसी भाषा-नीति वाले पाठक जी तत्कालीन विद्वानों के लिए असहज नहीं थे।

सन् 1902 ई. में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बनाए गए। सितंबर 1902 ई. के 'सरस्वती' में 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक से एक कार्टून छपा है। इसमें एक पुरूष का चित्र है, जिसके पांच सिर हैं। उसके साथ छपा है--मुंशी शैली, मौलवी शैली, पंडित शैली, यूरेशियन शैली, यूरोपियन शैली। चित्र के नीचे महावीरप्रसाद द्विवेदी रचित दोहा छपा है--

"दो पैरों पर एक धड़, फिर सिर पांच अनूप।
मुझ पंचरंगे पद्य का, देखो सुघर स्वरूप।।"

द्विवेदी जी ने अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा किए गए खड़ीबोली हिंदी के बंटवारे पर व्यंग्य किया है। हालांकि द्विवेदी जी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका को भी रेखांकित किया। 'सरस्वती' (फरवरी-मार्च 1903 ई. में) के संपादकीय में इन्होंने लिखा कि "कुछ दिनों से हिंदी के लेखकों का ध्यान पद्य की भाषा की ओर गया है। अब तक हिंदी का पद्य ब्रजभाषा में ही था। अब बोलचाल की भाषा में भी कविता होने लगी है। इस विषय की ओर पहले-पहल बाबू अयोध्या प्रसाद जी का ध्यान गया। बोलचाल की भाषा में कविता अवश्य होनी चाहिए। कोई कारण नहीं देख पड़ता कि हमलोग बोलें तो एक भाषा और कविता करें दूसरी भाषा में।"

हिंदी साहित्य के पहले व्यवस्थित इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आधुनिक काल' पर विचार करते वक्त लिखा है "रीतिकाल के भीतर हम दिखा चुके हैं कि किस प्रकार रसों और अलंकारों के उदाहरणों के रूप में रचना होने से और कुछ छंदों की परिपाटी बंध जाने से हिंदी कविता जकड़ सी उठी थी। हरिश्चन्द्र के सहयोगियों में काव्यधारा को नए-नए विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गई और पद्य के ढांचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता के दर्शन न हुए।"[4]

शुक्ल जी ने अपनी स्थापना को दुहराते हुए आगे लिखा कि "कुछ नूतन भावनाओं के समावेश के अतिरिक्त काव्य की परंपरागत पद्धति में किसी प्रकार का

परिवर्तन भारतेंदु काल में न हुआ। भाषा ब्रजभाषा ही रहने दी गई और उसकी अभिव्यंजनशक्ति का कुछ विशेष प्रसार न हुआ।"[5] आचार्य शुक्ल ने सही लिखा है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के सहयोगियों ने काव्यधारा को नए-नए विषयों की ओर मोड़ने की कोशिश की। साथ ही ब्रजभाषा के साथ भाषा के स्तर पर कोई छेड़छाड़ नहीं की। इसप्रकार, भाषा के स्तर पर साहित्य मध्यकालीन रहा। खड़ीबोली हिंदी की ऐतिहासिक जरूरत को गद्य के स्तर पर भारतेंदु-मंडल के साहित्यकार समझ रहे थे। पद्य के लिए इसकी महत्ता बगैर समझे, ब्रजभाषा पर जोर दे रहे थे। सवाल उठता है कि क्या आचार्य शुक्ल ने उनलोगों पर विचार किया है, जिन्होंने खड़ीबोली को कविता की भाषा बनाने की कोशिश की? आचार्य शुक्ल ने खड़ी बोली-पद्य आंदोलन एवं इसके अगुआ अयोध्या प्रसाद खत्री के बारे में 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में क्या लिखा है? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अयोध्या प्रसाद खत्री के बारे में दो जगहों पर लिखा है। आधुनिक काल में गद्य के विकास पर विचार करते हुए शुक्लजी ने लिखा है कि "खड़ी बोली पद्य' का झंडा लेकर घूमनेवाले स्वर्गीय बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री चारों ओर घूम-घूमकर कहा करते थे कि अभी हिंदी में कविता हुई कहाँ; सूर, तुलसी, बिहारी आदि ने जिसमें कविता की है वह तो 'भाखा' है 'हिंदी' नहीं। संभव है इस सड़े गड़े ख्याल को लिए अब भी कुछ लोग पड़े हो।"[6] यहाँ शुक्लजी ने इंशाअल्ला खां के जरिए कहा है कि मुसलमान संस्कृत मिश्रित खड़ी बोली या ब्रजभाषा को 'भाखा' कहते थे। मुसलमानों के 'भाखा' प्रयोग के आधार पर शुक्ल जी ने खत्री जी को खारिज किया है। गौरतलब है कि खत्री जी मुसलमानों के प्रयोग के अर्थ में 'भाखा' का उपयोग नहीं करते थे। वे ब्रजभाषा के लिए 'गँवारी बोली' या -'भाखा' का प्रयोग करते थे। इस लिहाज से खत्री जी की बात सच है। हिंदी साहित्य के इतिहास के दायरे में भले ही सूर, तुलसी, बिहारी की रचनाएं शामिल कर ली जाती हों; क्या वास्तव में इनकी रचनाएं हिंदी की रचनाएं हैं? खड़ीबोली के एक साहित्यिक रूप-उर्दू की रचनाओं को हिंदी की रचना के तौर पर स्वीकार नहीं किया जाता है। इस स्थिति में यह सवाल और भी महत्वपूर्ण है।

आचार्य शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में अयोध्या प्रसाद खत्री और

'खड़ी बोली पद्य-आंदोलन' की भावनाओं को समझने की कोशिश नहीं की। इन्होंने खत्री जी के प्रति व्यंग्य किया।"मुजफ़्फ़रपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री खड़ी बोली का झंडा लेकर उठे। संवत् 1945 में उन्होंने 'खड़ी बोली आंदोलन' की एक पुस्तक छपाई जिसमें उन्होनें बड़े जोर-शोर से यह राय जाहिर की (कि) अबतक जो कविता हुई, वह तो ब्रजभाषा की थी, हिंदी की नहीं। हिंदी में भी कविता हो सकती है। वे भाषातत्व के जानकार न थे। उनकी समझ में खड़ी बोली ही हिंदी थी। अपनी पुस्तक में उन्होंने खड़ीबोली पद्य की पाँच स्टाइलें कायम की थीं-जैसे, मौलवी स्टाइल, मुंशी स्टाइल, पंडित स्टाइल, मास्टर स्टाइल। उनकी पोथी में और पद्यों के साथ पाठक जी का 'एकांतवासी योगी' भी दर्ज हुआ। और कई कई लोगों से भी अनुरोध करके उन्होंने खड़ी बोली की कविताएं लिखाई। चंपारन के प्रसिद्ध विद्वान और वैद्य पं. चंद्रशेखरधर मिश्र, जो भारतेंदु जी के मित्रों में थे, संस्कृत के अतिरिक्त हिंदी में भी बड़ी सुंदर और आशु कविता करते थे। मैं समझता हूं कि हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में संस्कृत वृत्तों में खड़ीबोली के कुछ पद्य पहले पहल मिश्रजी ने ही लिखे। बाबू अयोध्या प्रसाद जी उनके पास भी पहुंचे और कहने लगे-'लोग कहते हैं कि खड़ीबोली में अच्छी कविता नहीं हो सकती। क्या आप भी यही कहते हैं? यदि नहीं तो मेरी सहायता कीजिए।' उक्त पंडित जी ने कुछ कविता लिखकर उन्हें दी, जिसे उन्होंने अपनी पोथी मे शामिल किया। इसी प्रकार खड़ी बोली के पक्ष में जो राय मिलती, वह भी उसी पोथी में दर्ज होती जाती थी। धीरे-धीरे एक बड़ा पोथा हो गया, जिसे बगल में दबाए वे जहाँ कहीं हिंदी के संबंध में सभा होती, जा पहुँचते। यदि बोलने का अवसर न मिलता या कम मिलता तो वे बिगड़कर चल देते थे।"[7]

अयोध्या प्रसाद खत्री जी का मूल्यांकन शुक्ल जी ने इन्हीं पंक्तियों में किया हैं शुक्ल जी ने खत्री जी के संदर्भ में गलत तथ्यों का उल्लेख किया है। अयोध्या प्रसाद खत्री ने 1887 ई. में 'खड़ी बोली का पद्य' भाग एक और दो छपवाया था। शुक्ल जी ने (1888 ई.) जिस साल का जिक्र किया है, उस साल उक्त किताबें नहीं छपी थी। शुक्ल जी ने लिखा है कि खत्री जी ने खड़ी बोली पद्य की पाँच स्टाइलें कायम की। यह सच है। लेकिन शुक्ल जी ने उदाहरण के तौर पर सिर्फ चार स्टाइलों

का उल्लेख किया है। इन चार स्टाइलों में तीन स्टाइल का नाम सही है। जबकि एक का नाम बिलकुल गलत लिखा है। खत्री जी ने 'मास्टर स्टाइल' जैसा कुछ नहीं कहा था। खत्री जी के पाँच स्टाइल हैं-ठेठ हिंदी, पंडित स्टाइल, मुंशी स्टाइल, मौलवी स्टाइल और यूरेशियन स्टाइल। खत्री जी मानते थे कि जबकि हिंदी में कविता नहीं हुई है। ब्रजभाषा की कविता को हिंदी की कविता मानना ठीक नहीं है। शुक्ल जी ने इस मान्यता के आधार पर खत्री के बारे में लिखा है कि 'वे भाषा तत्व के जानकार न थे।' भाषा-तत्व के आधार पर खत्री जी की मान्यता सही है। शुक्ल जी, खत्री जी की सही मान्यता को गलत बता रहे हैं। हिंदी के साहित्येतिहासकार ने शुक्लजी की मान्यता को आधार बनाकर खत्री जी का मूल्यांकन करते रहे, जो सरासर गलत है।

'कुछ नूतन भावनाओं के समावेश के अतिरिक्त काव्य की परंपरागत पद्धति में किसी प्रकार का परिवर्तन भारतेंदुकाल में न हुआ। भाषा ब्रजभाषा ही रहने दी गई।' --अपनी इस मान्यता का सही विकास शुक्ल जी ने नहीं किया। इन्होंने जिस काल खंड को (1850-1900) भारतेंदु काल कहा है, उसी काल में काव्य-भाषा की जगह से ब्रजभाषा को हटाकर खड़ीबोली हिंदी को स्थापित करने के लिए खत्री जी ने आंदोलन किया था। इस आंदोलन की शुरूआत 'खड़ीबोली का पद्य' के छपने के साथ हुई। इसी आंदोलन का नतीजा है कि द्विवेदी-युग में खड़ीबोली कविता को इतनी जगह मिलने लगी। इसके प्रति विरोध का स्वर कमजोर होने लगा। अयोध्या प्रसाद खत्री के आंदोलन ने खड़ीबोली कविता के पक्ष में लोगों को तैयार किया। परिणाम स्वरूप भारतेंदु -युग में खड़ीबोली कविता को लेकर जो भ्रम बना हुआ था, कम हुआ। इसकी ऐतिहासिक ज़रूरत का पता साहित्यकारों को चला।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के साहित्य खासकर भारतेंदु-युग पर विस्तारपूर्वक लिखा है। विडंबना यह है कि डॉ. शर्मा ने भी अयोध्या प्रसाद खत्री के आंदोलन पर ध्यान नहीं दिया है। क्या यह संभव है कि भारतेंदु-युग (1850-1900) के साहित्य पर विचार के दौरान अयोध्या प्रसाद खत्री का आंदोलन उपेक्षित रह जाए? क्या खत्री का आंदोलन इतना

कमजोर था, जिसपर ध्यान न दिया जाए? डॉ रामविलास शर्मा ने 'भारतेंदु युग' और हिंदी भाषा की विकास परंपरा' में इस कालखंड पर विचार किया है। डॉ शर्मा की यह किताब 1942 ई. में 'भारतेंदु-युग' नाम से छपी थी। कुछ निबंधों को जोड़ने के बाद इन्होंने इसका नाम 'भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा' रखा। इस किताब के एक अध्याय 'खड़ी बोली और ब्रजभाषा' में शर्मा जी ने ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली विवाद पर विचार किया है। इस निबंध में रामविलास जी ने एक जगह खत्री जी का जिक्र किया है। "खड़ी बोली का पक्ष करनेवाले नये लोग थे जिनमें श्रीधर पाठक और अयोध्या प्रसाद खत्री मुख्य थे।"[8] डॉ. शर्मा ने न तो 'खड़ी बोली का पद्य' किताब की चर्चा की; न इसके बाद होने वाले आंदोलन की। रामविलास जी ने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंद नवजागरण' के एक अध्याय 'साहित्य-समालोचना और रीतिवाद-विरोधी अभियान' के एक हिस्से में ब्रजभाषा-खड़ी बोली विवाद के संदर्भ में विचार किया है। इसमें डा. शर्मा ने खड़ी बोली कविता को स्थापित करने का पूरा श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को दिया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जिस विरासत के साथ खड़ी बोली कविता को स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे, डा. शर्मा ने उसका जिक्र करना भी उचित नहीं समझा। इसकी वजह क्या है कि रामविलास जी अयोध्या प्रसाद खत्री और इनकी संपादित किताब 'खड़ी बोली का पद्य' की चर्चा नहीं करते हैं? दरअसल डॉ. रामविलास शर्मा ने तथाकथित 'हिंदी नवजागरण' की जो भव्य रूप-रेखा खींची है; (जिसका तर्कसंगत नाम, डॉ. वीरभारत तलवार ने 'हिंदी-आंदोलन' प्रस्तावित किया है।) 'खड़ी बोली-पद्य-आंदोलन' के विरोधी--इसके नायक हैं। खत्री और इनके आंदोलन की विस्तृत चर्चा करने से रामविलास जी के नायकों के नायकत्व पर सवाल खड़ा होना स्वाभाविक है। अपने नायकों के कार्य को बढ़ा-चढ़ा कर बताने के लिए डॉ. शर्मा अयोध्या प्रसाद खत्री की भूमिका को रेखांकित नहीं करते हैं।

भारतेंदु-काल में रामविलासजी तथाकथित 'हिंदी-नवजागरण' का दूसरा चरण घटित होता देखते हैं। इस चरण में खड़ी बोली हिंदी-गद्य का विकास होता है, रामविलास जी ने इसे खूब सराहा है। भारतेंदु-मंडल के लेखकों को इसका श्रेय दिया

है। इसके साथ सवाल उठता है कि खड़ीबोली-पद्य के विकास को भी तथाकथित हिंदी-नवजागरण की कसौटी बनाया जाना चाहिए। इस कसौटी पर भारतेंदु मंडल के लेखक बौने साबित होंगे-रामविलास जी को इसका पता है। इन्हीं वजहों से डॉ. शर्मा अयोध्या प्रसाद खत्री और खड़ीबोली पद्य-आंदोलन की विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं करते हैं। खड़ीबोली कविता की ऐतिहासिक जरूरत को स्वीकारते हुए विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा द्विवेदी-काल के संदर्भ में करते हैं क्योंकि इसकाल में खड़ीबोली कविता को स्थापित करने का श्रेय उनके दूसरे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को जो मिलना था।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली पद्य आंदोलन की शुरूआत की थी। 'भारतेंदु-मंडल' के लेखकों ने इसके लिए खत्री जी की कटु आलोचना की। श्रीधर पाठक, भुवनेश्वर मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र इस आंदोलन के मुखर समर्थक थे। इस आंदोलन का पूरा श्रेय अयोध्या प्रसाद खत्री को देते हुए श्रीधर पाठक ने उन्हें एक खत लिखा।

"As regards your agitation for poetry in ख. हिं. I was a bay in school in 1877 and Knew nothing of what was being done in regard to हिंदी or खड़ी हिंदी. All credit however due to you for the agitation."[9]

पाठक जी के इस पत्र के अलावा इस लघु शोध प्रबंध के दूसरे अध्याय 'खड़ी बोली पद्य का आंदोलन' से भी, इस आंदोलन में, खत्री जी की भूमिका का पता चलता है। यह कैसी विडंबना है, जिस श्रीधर पाठक ने अयोध्या प्रसाद खत्री को उनके जीवन-काल में, खड़ीबोली-पद्य-आंदोलन का पूरा श्रेय दिया और खत्रीजी के पक्ष में, 'खड़ीबोली का पद्य' का विरोध करने वाले साहित्यकारों का मुखर विरोध किया, उन्हीं श्रीधर पाठक ने द्विवेदी-युग में खत्री जी के अवदानों की उपेक्षा करने पर एकबार भी मुँह नहीं खोला। इतना ही नहीं, 10 अक्तूबर से 12 अक्तूबर 1910 ई. तक काशी में प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस मौके पर श्रीध ार पाठक ने 'खड़ी बोली की कविता' शीर्षक आलेख पढ़ा। इस आलेख में , इन्होंने खड़ीबोली कविता के महत्व पर प्रकाश डाला। खड़ीबोली पद्य को भारतवासी मात्र के

स्वत्व और अभिमान का अधिकारी बनने के प्रति अपनी आशा और आस्था व्यक्त की। लेकिन इस आलेख में अयोध्या प्रसाद खत्री की ऐतिहासिक भूमिका का जिक्र तक नहीं किया।[10]

अयोध्या प्रसाद खत्री का ऐतिहासिक महत्त्व सिर्फ खड़ी बोली हिंदी में कविता के लिए आंदोलन की शुरूआत करने के कारण नहीं है। बल्कि इतिहास के उस दौर में हिंदी-भाषा को हिंदू-धर्म और उर्दू-भाषा को मुसलमान-धर्म की भाषा मानकर पनपने वाली अलगाववादी प्रवृत्तियों का प्रतिकार करने के कारण भी है। खत्री जी हिंदी और उर्दू को दो अलग भाषा मानने से इंकार करते थे। वह इसे दो शैलियां मानते थे। खत्री जी ने 'मुंशी हिंदी' की सिफारिश की। काफी बाद में महात्मा गांधी ने जिसे 'हिंदुस्तानी भाषा' कहा, वह खत्री जी की 'मुंशी-हिंदी' का ही प्रतिरूप है। महात्मा गांधी आजादी की लड़ाई के दौर में हिंदू-उर्दू को करीब लाने के लिए 'हिंदुस्तानी' की सिफारिश कर रहे थे। खत्री जी ने गांधी जी से काफी पहले इस संकट को भांपकर ऐसा सुझाव दिया था। अगर खत्री जी की मांग को तत्कालीन साहित्यकारों ने स्वीकार कर लिया होता तो बाद में यह समस्या इतना विकराल रूप धारण नहीं करती।

इतिहास के उस दौर में हिंदी के बड़े साहित्यकार ब्रजभाषा की सीमा का अतिक्रमण करने का साहस नहीं कर पा रहे थे। अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली हिंदी कविता की ऐतिहासिक जरूरत को समझते हुए इसके आंदोलन पर बल दिया। अयोध्या प्रसाद खत्री स्कूल-शिक्षक थे। बच्चों को पढ़ाने के दौरान, उन्हें यह बोध हुआ कि स्कूल में गद्य खड़ीबोली में और पद्य ब्रजभाषा, अवधी आदि लोक भाषाओं में पढ़ाया जाना उचित नहीं है। बिहार में हिंदी के समर्थक भूदेव मुखोपाध्याय ने खत्री जी की चिंता को सही बताया था। भूदेव मुखोपाध्याय, महेश नारायण सरीखे लोगों के नैतिक समर्थन ने खत्री जी को इस आंदोलन के लिए प्रेरित किया। अयोध्या प्रसाद खत्री की वर्ग-स्थिति को देखकर उनका आंदोलन और भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। खत्री जी ने जब 'खड़ीबोली का पद्य' अपने खर्च से छपवाकर लोगों निःशुल्क बांटना शुरू किया, उस समय वे पेशकार की नौकरी कर रहे थे अपनी छोटी

तनख्वाह के बावजूद अंत तक बगैर किसी बाहरी मदद के खत्री जी ने इस आंदोलन को जारी रखा। पश्चिमोत्तर प्रांत के जिन साहित्यकारों ने 'खड़ी बोली का पद्य' का विरोध किया, उनकी आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक हैसियत अयोध्या प्रसाद खत्री की तुलना में काफी बेहतर थी। साहित्यिक-दुनिया में उनका काफी नाम था। उन लोगों की तूती बोलती थी। खत्री जी इन चीजों से बेपरवाह अपने मकसद के लिए प्रयास करते रहे। खत्री जी ने 'खड़ीबोली का पद्य' छपवाकर हिंदी कविता की भाषा के प्रचलित मानदंड को चुनौती दी। हिंदी-साहित्य में अगले तीस सालों तक हिंदी कविता की भाषा को लेकर बहस होती रही। अंत में, खड़ीबोली हिंदी, कविता की भाषा बनी। खत्री जी के प्रस्ताव को लंबे विवाद के बाद स्वीकृति मिली। छायावाद आते -आते खड़ीबोली मुख्यधारा में आ गई और ब्रजभाषा हाशिए पर चली गई।

ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि "यद्यपि भारतेंदु जी के काल ही में यह प्रश्न उठा था कि गद्य तथा पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए। पर उस समय के प्रमुख साहित्यकारों ने यही निश्चय किया कि पद्य में खड़ीबोली के उपयोग से सरसता नहीं आती और उर्दू शब्दों की भरमार हो जाने से हिंदी पद का अभाव-सा हो जाता है। भारतेंदु-काल के अनन्तर खड़ीबोली का आंदोलन ही उठ खड़ा हुआ, जिसमें बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने विशेष भाग लिया।"[11]

ब्रजरत्नदास ने यह नहीं बताया है कि 'खड़ीबोली-आंदोलन' का आरंभ अयोध्या प्रसाद खत्री की संपादित किताब 'खड़ीबोली का पद्य' से हुआ। खड़ीबोली में कविता पहले भी कुछ लोगों ने लिखी थी। इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही थी। लेकिन इस आवश्यकता को आंदोलन का रूप अयोध्या प्रसाद खत्री ने दिया। खत्री जी के जीवनीकार उमाशंकर ने इनके ऐतिहासिक महत्व को समझते हुए सिफारिश की है "सन् 1885 से 1903 ई. का जो समय है वह समय खत्री जी का है। उस युग को हम खत्री-युग कह सकते हैं।"[12] हिंदी-साहित्य के विद्वानों को इस संदर्भ में विचार करना चाहिए।

संदर्भ-सूची

1. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' प्रतिनिधि संकलन, संपादक-विश्वनाथ त्रिपाठी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 पहला संस्करण 1997, पृष्ठ-138-145
2. वही, पृष्ठ-138-139
3. वही, पृष्ठ-143
4. हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, सन-2002, पृष्ठ-412
5. वही, पृष्ठ-439
6. वही, पृष्ठ-287
7. वही, पृष्ठ-409
8. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा-रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण 1975, पृष्ठ-118
9. अयोध्या प्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ-पृष्ठ-97
10. अयोध्या प्रसाद खत्री (मोनोग्राफ)-रामनिरंजन परिमलेंदु, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2003; पृष्ठ-79
11. खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास-ब्रजरत्नदास, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय संस्करण 1952, पृष्ठ सं.-180,
12. खड़ी बोली कविता आंदोलन के अगुआ स्वर्गीय अयोध्या प्रसाद खत्री-उमाशंकर, अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति विश्लेषण कार्यालय, साहु रोड, मुजफ्फ़रपुर, 1959; पृष्ठ-41

उपसंहार

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक ब्रजभाषा हिंदी-साहित्य की मुख्यधारा की भाषा थी। कविता साहित्य की मुख्य विधा थी। ब्रजभाषा ने अपने जैसी लोकभाषाओं मसलन-अवधी, मैथिली, भोजपुरी को विस्थापित कर खुद को केंद्र में स्थापित कर लिया था। ब्रजभाषा के अपने संस्कार थे। ब्रजभाषा के साथ विषय भी मध्यकालीन होते थे। भारतेंदु-युग के रचनाकारों ने विषय के स्तर पर बदलाव लाने की कोशिश की। इस मकसद में काफी हद तक इनलोगों को सफलता भी मिली। लेकिन ब्रजभाषा के साथ जो काव्य-संस्कार जुड़े हुए थे, उसका अतिक्रमण संभव नहीं हो रहा था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में बिलकुल ठीक नोट किया हैं कि कुछ नवीन भावनाओं को शामिल करने के अतिरिक्त काव्य के परंपरागत ढांचे में खास परिवर्तन नहीं आया। काव्य-भाषा ब्रजभाषा ही रही। 'भारतेंदु-मंडल' के साहित्यकार साहित्य को तत्कालीन जीवन से जोड़ना चाहते थे। बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति में देश-काल का माहौल ब्रजभाषा की सीमा में नहीं आ रहा था। इसके लिए, कविता जैसी विधा की सीमा तोड़ने की जरूरत थी। तत्कालीन साहित्यकारों ने ऐसा किया। कविता की सीमा के अहसास का नतीजा गद्य के विकास के रूप में आया। वह गद्य ब्रजभाषा का नहीं था। तत्कालीन भावनाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता ब्रजभाषा-गद्य में नहीं थी। खड़ीबोली हिंदी-गद्य को स्वीकृति मिली। कई विधाओं का जन्म हुआ। इस प्रकार, गद्य में खड़ीबोली हिंदी का उपयोग होने लगा। लेकिन कविता की भाषा ब्रजभाषा ही रही।

गद्य की अपेक्षा काव्य को श्रेष्ठ माना जाता था। साहित्य की मुख्य विधा कविता बनी रही। ब्रजभाषा का धर्म से पुराना संबंध था। खासकर, कृष्ण ाक्ति को केंद्र में रखकर चलनेवाले वैष्णव धर्म से। खड़ीबोली का काव्य-भाषा के तौर पर मुसलमान उपयोग करते थे। खड़ीबोली उर्दू में अच्छी रचनाएं लिखी जा रही थी। इसके कई कलाकार स्थापित हो चुके थे। उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध आते-आते सत्ता (सरकारी नौकरी) में भागीदारी के लिए हिंदू और मुस्लिम बुद्धिजीवी एक-दूसरे

के आमने-सामने आ गए। अपनी ताकत बढ़ाने के लिए, धर्म के आधार पर लोगों को, अपने पीछे लामबंद करने की कोशिश दोनों तबकों के बुद्धिजीवियों ने की। इसमें इन्हें सफलता मिली। गौरतलब है कि धर्म के जरिए जिस आम जनता को अपने पीछे लामबंद किया जा रहा था, उसे सत्ता में भागीदारी नहीं मिलनी थी। इसमें भागीदारी हिंदू और मुस्लिम धर्म के सिर्फ मध्यवर्ग को मिलनी थी। इन मध्यवर्गीय नेताओं ने अपनी आपसी प्रतिद्वंद्विता में धर्म का इस्तेमाल किया। आम जनता को सांप्रदायिक आधार पर बांटने की सफल कोशिश की। इतिहास के इसी दौर में भाषा को धर्म के साथ जोड़कर देखा जाने लगा। अब हिंदी संस्कृतनिष्ठ होने लगी तथा उर्दू में अरबी-फारसी शब्द बढ़ने लगे।

मुसलमानों से द्विज हिंदू जातियों का पुराना धार्मिक वैर था। मुसलमान यानी म्लेच्छ के छूने से द्विज हिंदुओं की वस्तुएं अपवित्र हो जाती थी। भाषा के भी साथ यही मान्यता लागू हुई। मुसलमानो के साथ-साथ यावनी शब्दों (उर्दू, अरबी, फारसी) से भी परहेज किया जाने लगा। सवाल था कि यावनी शब्दों से कैसे बचा जाए? ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण की पूजा-अर्चना की जाती थी। ईश्वर से जुड़ी रचनाएं ब्रजभाषा में होती आ रही थी। इन रचनाओं को यावनी शब्दों से बचाना-तत्कालीन साहित्यकारों की गंभीर चिंता थी। खड़ीबोली हिंदी और उर्दू एक-दूसरे के करीब थी। ऐसे में यह करीबी तत्कालीन साहित्यकारों के लिए चुनौती थी।

बिहार के मुजफ़्फ़रपुर जिला के अयोध्या प्रसाद खत्री ने गद्य-पद्य की भाषा में एकरूपता लाने के लिए 1887 ई. में 'खड़ीबोली का पद्य' दो खंडों में संपादित किया। इस किताब की भूमिका में खत्री जी ने ब्रजभाषा कविता को हिंदी कविता नहीं मानने की अपील की। इन्होंने लिखा कि खड़ीबोली के व्याकरण में ब्रजभाषा छंद को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिंदी में *Poetical license* समझना, हिंदी वैयाकरण की, मेरी समझ में, भूल है। इस किताब में अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ीबोली हिंदी को पांच भागों में बाँटा-ठेठ हिंदी, पंडित हिंदी, मुंशी हिंदी, मौलवी हिंदी और यूरेशियन हिंदी। इनका मानना था कि आज के समस्त हिंदी रचनाकार इन्हीं पाँच स्टाइलों में किसी एक का उपयोग करते हैं। खत्री जी ने इन पांचों स्टाइल में मुंशी

हिंदी या मुंशी स्टाइल को आदर्श-हिंदी कहा। 'मुंशी-स्टाइल' में न प्रचलित संस्कृत शब्दों से परहेज था; न आमफहम अरबी-फारसी या उर्दू शब्दों से। 'मुंशी-हिंदी में अप्रचलित संस्कृत शब्द और अप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों से बचने की सलाह दी गई थी। इसमें धर्म को लेकर कोई हठ नहीं था।

'खड़ीबोली का पद्य' (पहला भाग) को छपवाकर अयोध्या प्रसाद खत्री तत्कालीन विद्वानों, साहित्य प्रेमियों और रचनाकारों को इस किताब की प्रति खुद डाकखर्च लगाकर भेजते थे। इसपर राय मांगते थे। उस दौर के हिंदी-साहित्य में 'भारतेंदु मंडल' की तूती बोलती थी। साहित्य-सत्ता-संरचना में 'भारतेंदु मंडल' के साहित्यकारों का दबदबा कायम था। तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के संपादक 'भारतेंदु मंडल' के साहित्यकार थे। इन साहित्यकारों ने खड़ी बोली कविता का प्रखर विरोध किया। राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने बढ़-चढ़कर ब्रजभाषा का पक्ष लिया। खड़ीबोली कविता के ऐतिहासिक महत्व को नजरअंदाज करते हुए, इन लेखकों ने बिना आधार के, खड़ीबोली पर कई बेबुनियाद आरोप लगाए। कालाकांकर से प्रकाशित दैनिक पत्र 'हिंदोस्थान' में 'खड़ीबोली का पद्य' के पक्ष-विपक्ष में कई लेख छपे। राधाचरण गोस्वामी के आरोपों का खंडन श्रीधर पाठक ने किया। श्रीधर पाठक ने अकेले 'भारतेंदु मंडल' के लेखकों का जवाब दिया। राधचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट तीनों महत्वपूर्ण लेखकों ने खड़ी बोली हिंदी-कविता में अरबी-फारसी शब्द घुस आने के प्रति चिंता जतायी। अपनी 'पद्यमयी सरस्वती' की पवित्रता का सवाल उठाया। दरअसल खड़ी बोली कविता के विरोध का मुख्य कारण यही था। गौरतलब है कि 'खड़ीबोली का पद्य' के पक्षधर श्रीधर पाठक भी ऐसा सोचते थे। दोनों की भाषा-नीति समान थी। फर्क सिर्फ इतना ही था कि पाठक जी अरबी-फारसी शब्द से अपनी कविता को बचाने में अपने को सक्षम मानते थे। नोट करने की बात है कि श्रीधर पाठक की भाषा-नीति खत्री जी की भाषा-नीति एक नहीं थी। श्रीधर पाठक और अयोध्या प्रसाद खत्री -खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखी जा सकती है-सिर्फ इसी मुद्दे पर एक साथ थे।

'भारतेंदु मंडल' के साहित्यकारों को भय था कि खत्री जी की बात मानने पर हिंदी कविता को उर्दू कविता की परंपरा से जोड़ना होगा। 'भारतेंदु मंडल' का यह भय सही था। खत्री जी हिंदी-उर्दू को दो भाषा नहीं मानते थे। इसे एक ही भाषा की दो शैली मात्र मानते थे। भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से अयोध्या प्रसाद खत्री की यह मान्यता सही है। ऐसा लगता है कि इसका एहसास 'भारतेंदु मंडल' को रहा होगा। इसीलिए वे खड़ी बोली हिंदी कविता संभव है, इसे स्वीकार नहीं करते थे। इसे स्वीकार करने पर 'पवित्र पद्यमयी सरस्वती' को यावनी कविता की परंपरा से जोड़ना पड़ता।

दुनिया की जितनी भाषाओं में गद्य संभव हुआ है, उसमें पद्य भी रचा गया है। भाषा-शास्त्र की इस मान्यता को प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और राधाचरण गोस्वामी स्वीकार नहीं कर रहे थे। इनलोगों का मानना था कि गद्य एक भाषा में और पद्य दूसरी भाषा में रचने से हमारा गौरव बढ़ेगा। असल में यह ब्रजभाषा कविता के जरिए कविता जैसी पवित्र विधा को बचाने का बहाना मात्र था। किसी भाषा में गद्य और पद्य का नहीं होना--उस भाषा की कमजोरी है। ब्रजभाषा कविता के समर्थक कमजोरी को गौरव साबित करने का असफल प्रयास कर रहे थे।

ब्रजभाषा के समर्थक 'भारतेंदु मंडल' के साहित्यकारों ने 'खड़ी बोली का पद्य' के छपने से पहले कुछेक कविताएं खड़ी बोली हिंदी में रची थी। दीगर बात है कि इनकी कविताएं बहुत अच्छी नहीं बनी थी। यह स्वाभाविक भी था। प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' में, राधाचरण गोस्वामी 'भारतेंदु' और बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप' में कुछ खड़ी बोली की कविता छाप चुके थे। ये कविताएं लावनी, कजली आदि लोकराग में रची गई थीं। इन कविताओं को छाप कर इन्होंने खड़ीबोली को अपना समर्थन दिया था। लेकिन जब आंदोलन शुरू हुआ तो सबसे ज्यादा इन्हीं लोगों ने विरोध किया। विरोध में भारतेंदु हरिश्चन्द्र की बात को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया। अंत में यह बात साफ हो गई कि खड़ीबोली हिंदी में कविता करने पर अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग इनकी सबसे बड़ी चिंता है। यह चिंता इनके परंपरागत

धार्मिक संस्कारों का नतीजा थी। अयोध्या प्रसाद खत्री ने हिंदी-उर्दू को करीब लाने की कोशिश की थी। यह तत्कालीन इतिहास की अनिवार्य जरूरत थी, जिसे हिंदी के बुद्धिजीवी समझ नहीं सके थे। भाषा के आधार पर जिस सांप्रदायिकता ने बाद में जन्म लिया, वह हिंदी-उर्दू को करीब रखने पर शायद इतना विकराल रूप धारण नहीं करती। खत्री जी की भाषा-नीति अपने समय से काफी आगे की थी। आज इसे स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

आधार-ग्रंथ

1. हिन्दी व्याकरण-अयोध्या प्रसाद खत्री, बिहारबंधु प्रेस, बांकीपुर, पटना-प्रथम संस्करण, 1877 ई.
2. मौलवी स्टाइल की हिंदी का छंद भेद--अयोध्या प्रसाद खत्री, मुज़फ़्फ़रपुर, 1887 ई. लीथो मुद्रण
3. मौलवी साहब का साहित्य--अयोध्या प्रसाद खत्री, मुज़फ़्फ़रपुर, 1887 ई. लीथो मुद्रण
4. खड़ी बोली का पद्य (पहिला भाग) --संग्रहकर्त्ता : अयोध्या प्रसाद खत्री, नारायण प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर, प्रथम संस्करण, 1887 ई.
5. खड़ी बोली का पद्य--(दूसरा भाग) संग्रहकर्त्ता, अयोध्या प्रसाद खत्री, नारायण प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर, प्रथम संस्करण, 1887 ई.
6. खड़ीबोली का पद्य--संग्रहकर्त्ता, अयोध्या प्रसाद खत्री, संपादक-फ्रेडरिक पिंकौट, डब्ल्यू. एच.एल्लेन एंड कंपनी, 13, वाटरलू प्रेस, लंदन-1889 ई.
7. अयोध्या प्रसाद खत्री-स्मारक ग्रंथ--संपादक-शिवपूजन सहाय, प्रो. नलिनविलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण 1960

संदर्भ-ग्रंथ और सहयोगी पुस्तकें

1. अयोध्या प्रसाद सिंह 'हरिऔध' - हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, बिहार, विक्रम संवत 1997 ई.
2. इंशाअल्लाह खाँ - रानी केतकी की कहानी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विक्रम संवत 2002
3. उमाशंकर - खड़ीबोली कविता आंदोलन के अगुआ स्वर्गीय अयोध्या प्रसाद खत्री, अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति, विश्लेषण कार्यालय, साहू रोड, मुज़फ़्फ़रपुर, प्रथम संस्करण, अप्रैल 1959 ई.
4. उमाशंकर - कलमशिल्पी निर्माण प्रकाशन, कदमकुआं, पटना-3, प्रथम संस्करण 1961 ई.
5. कपिलदेव सिंह - ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण 1956
6. कर्मेंदु शिशिर (सं.) - भारतेंदु मंडल के प्रमुख रचनाकार राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990
7. कल्याण कुमार झा - बिहार की हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता, साहित्य कला संगम, बेतिया, प्रथम संस्करण 1997
8. कार्तिक प्रसाद खत्री - हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, 1894 ई.
9. कुमारी छवि (सं.) - हिंदी पत्रकारिता की विरासत, संकल्प प्रकाशन, पटना, संस्करण-1998
10. केशरी नारायण शुक्ल - आधुनिक काव्यधारा, सरस्वती मंदिर, काशी, विक्रम संवत 2007
11. कृष्णदेव प्रसाद गौड़ - आधुनिक खड़ीबोली कविता की प्रगति, ज्ञानमंडल, काशी, 1929 ई.
12. कृष्णशंकर शुक्ल - आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य कुटीर, काशी, विक्रम संवत, 1993
13. धीरेन्द्र नाथ सिंह - आधुनिक हिंदी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, प्रथम संस्करण - खृष्टाब्द, 1986
14. नामवर सिंह (प्रधान संपादक) - चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 1995

15. नीलाभ (शोध एवं संपादन) - हिंदी साहित्य का मौखिक इतिहास (खंड-3), महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, प्रथम संस्करण 2004
16. नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य, विश्व भारती भंडार, इलाहाबाद विक्रम संवत 2007
17. नंददुलारे वाजपेयी - हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, विक्रम संवत 1999
18. पद्मधर पाठक (सं.) - श्रीधर पाठक ग्रंथावली, राजस्थानी ग्रंथाकार, सोटती गेट, जोधपुर, राजस्थान, प्रथम संस्करण 1996
19. पद्मधर पाठक - फ्रेडरिक पिंकौट : व्यक्तित्व और कृतित्व, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, विक्रम संवत 2027
20. प्रेमनारायण शुक्ल (सं.) - सभापतियों के भाषण (भाग-3), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1987
21. बाबू श्यामसुंदर दास - हिंदी भाषा, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1946 ई.
22. ब्रजरत्न दास - खड़ीबोली हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय संस्करण 1952
23. मिश्र बंधु - मिश्र बंधु विनोद, हिंदी ग्रंथ प्रसारक मंडली, खंडवा, विक्र संवत् 1970
24. रामचन्द्र तिवारी - प्रतापनारायण मिश्र, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992
25. रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, सन-2002
26. रामगोपाल - स्वतंत्रता पूर्व हिंदी के संघर्ष का इतिहास, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक संवत 1886
27. रामनिरंजन परिमलेंदु - अयोध्या प्रसाद खत्री, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
28. रामनिरंजन परिमलेंदु - भारतेंदु युग के भूले बिसरे कवि और उनका काव्य, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण-विक्रम संवत 2059
29. रामविलास शर्मा - भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि, दिल्ली-2, प्रथम संस्करण 1975

30. रामविलास शर्मा - महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-2, प्रथम संस्करण 1975

31. लक्ष्मीकांत वर्मा (सं.) - हिंदी आंदोलन, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण 1964 ई.

32. लक्ष्मीशंकर व्यास (सं.) - सभापतियों के भाषण (भाग-1), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1987

33. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिंदी साहित्य, हिंदी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 1981 ई.

34. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 1952 ई.

35. विद्यानाथ मिश्र (सं.) बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री, अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति समिति, विश्लेषण कार्यालय, साहुरोड, मुजफ्फरपुर, बिहार, 1959

36. विद्यानिवास मिश्र (सं.) - सभापतियों के भाषण (भाग-2), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 2001

37. वीरभारत तलवार - रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002

38. शितिकंठ मिश्र - खड़ीबोली का आंदोलन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण 1956

39. सुमित्रानंदन पंत - पल्लव, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, ई. 1942

40. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' - परिमल, गंगा ग्रंथाकार, विक्रम संवत 2007

41. हेमंत शर्मा (सं.) - भारतेंदु समग्र, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशंस प्रा. लि., वाराणसी, प्रथम संस्करण 2002

42. हंस कुमार तिवारी (प्र. सं.) - हिंदी साहित्य और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्करण - शकाब्द, 1906

43. ज्ञानचन्द्र जैन - भारतेंदु हरिश्चन्द्र : एक व्यक्तित्व चित्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2004

44. Alok Rai - Hindi Nationalism, Orient Longman Pvt. Ltd., 2000

45. Sudhir Chandra - Oppressive Present, Oxford University Press, 1992

46- Vasudha Dalmia - The Nationalization of Hindu Traditions, Oxford University Press 1997

पत्र-पत्रिकाएं

1. हिन्दी प्रदीप : मासिक पत्र, इलाहाबाद, अगस्त 1879 ई. अक्टूबर 1884 ई., फरवरी 1885 ई., अक्टूबर 1886 ई., अक्टूबर-नवंबर-दिसंबर 1887 ई., जुलाई 1888 ई., सितम्बर-दिसंबर 1896 ई., अप्रैल-मई-जून 1900 ई.
2. ब्राह्मण : मासिक पत्र, कानपुर, 15 जून 1884 ई., फरवरी ई.-मार्च 1888 ई, (हरिश्चन्द्र संवत् 4), 15 मई 1889 ई.
3. सारसुधानिधि : साप्ताहिक, कलकत्ता, 28 जुलाई 1879 ई.
4. भारत जीवन : साप्ताहिक, वाराणसी, 16 जून 1884 ई., 18 अगस्त 1884 ई., 15 मई 1899 ई.
5. भारतमित्र : साप्ताहिक, कलकत्ता, 7 जुलाई 1887 ई., 16 मार्च 1901 ई., 30 अगस्त 1902 ई.-दिसंबर 1902 ई.
6. नागरीप्रचारिणी पत्रिका : त्रैमासिक, वाराणसी, जून 1899 ई. 1901 ई. (पाचवाँ भाग), 1902 ई. (भाग 6)
7. समालोचक : मासिक पत्र, जयपुर, अगस्त 1902 ई., सितंबर 1902 ई., नवम्बर 1902 ई., दिसंबर 1902 ई., जून-जुलाई 1903 ई., अक्टूबर-नवम्बर 1903 ई., जनवरी-फरवरी 1904 ई., मार्च-अप्रैल 1904 ई., अगस्त 1905 ई.
8. सरस्वती : मासिक पत्र, इलाहाबाद, जनवरी 1900 ई.-1905 ई. (सम्पूर्ण)
9. धर्मयुग : साप्ताहिक, मुम्बई, 16 सितम्बर 1962 ई., 22 सितम्बर 1962 ई.,
10. द बिहार टाइम्स : अंग्रेजी साप्ताहिक, पटना , 23 अप्रैल 1901 ई., 21 मई 1901 ई.
11. मित्र-3, सं.-मिथिलेश्वर, आरा बिहार
12. वर्त्तमान साहित्य, शताब्दी कविता विशेषांक, संपादक-लीलाधर मंडलोई, 2000
13. वर्त्तमान साहित्य, शताब्दी आलोचना विशेषांक, संपादक-अरविंद त्रिपाठी, 2002
14. दिवान-ए-सराय, अंक-1, मीडिया विमर्श, हिंदी-जनपद, संपादक-रविकांत, संजय शर्मा प्रकाशक-विकासशील समाज अध्ययन पीठ और वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
15. प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, काशी कार्यविवरण, 1910 ई.....चतुर्थ हिंदी साहित्य सम्मेलन, भागलपुर, कार्यविवरण, 1913 ई.

परिशिष्ट

खड़ी बोली का पद्य

1ला परिच्छेद

ठेठ हिन्दी

मुंशी इंशाअल्लाह खां

चौतुका

घोड़े पर अपने चढ़ के जो आता हूं मैं,
करतब जो हैं सो सब दिखाता हूं मैं,

उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी,
कहता जो कुछ हूं कर दिखाता हूं मैं।

धुन

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ भली बुरी थी?

चुपके चुपके कराहती थी
जीना अपना न चाहती थी।

कहती थी कभी अरी मदनवान।
है आठ पहर मुझे वही ध्यान।

यहां प्यास किसे भला भूख?
देखूं हूं वही हरे हरे रूख।

टपके का डर है अब यह कहिये।
चाहत का घर है अब यह कहिये।

अमरइयों में उन का वह उतरना,
और रात का साई साई करना,

और चुपके से उठके मेरा जाना,
और तेरा वह चाह का जताना,

उनकी वह उतार अगूंठी लेनी,

और अपनी अगूंठी उनको देनी,
आंखों में मेरे वह फिर रही है।
जी का जो रूप था वही है।

क्यों कर उन्हें भुलूं क्या करूं मैं?
कब तक मा बाप से डरूं मैं?

अब मैंने सुना है ऐ मदन वान।
बन वन के हिरन हुए उदय भान।

चरते होंगे हरी हरी दूब।
कुछ तू भी पसीज सोच में डूब।

मैं अपनी गई हूं चौकड़ी भूल।
मत मुझको सुंघा यह डह डहे फूल।

फूलों को उठाके यहां से लेजा।
सौ टुकड़े हुआ मेरा कलेजा।

बिखरे जी को न कर इकट्ठा।
एक घास का लाके रखदे गट्ठा।

हरयाली उसी की देखलूं मैं।
कुछ और तो तुझ को क्या कहूं मैं?

इन आंखों में है भड़क हिरन की।
पलकें हुई जैसे घास बन की[1]।

जब देखिये डब डबा हरी[2] हैं।
ओसें आंसू की छा रही हैं।

यह बात जो जी में गड़ गई है।
एक ओस सी मुझ पै पड़ गई है।

दोहा

छा गई ठंढि सांस झाड़ों में।
पड़ गई[3] कूक सी पहाड़ों में।

हम नहीं हंसने से रुकते जिसका जी चाहे हंसे।

है वही अपनी कहावत आप से जी आ फंसे।
अब तो सारा अपने पीछे झगड़ा झांटा लग गया।
पाव का क्या ढूंढ़ती है? जी में कांटा लग गया।

चौतुका

पौदों ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पांव में डालियों ने तोड़े पहने।

बूटे बूटे ने फूल फल के गहने,
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े
प ह न ।

दोहा[4]

यों[5] तु देखो, बाछड़े, जी वाछड़े, जी वाछड़े,
हम से अब आने लगी हैं आप यह मुहरे
क ड ।

छान मारे बन के थे अपने जिन के लिये।
वह हिरन जोबन के मद में हैं बने दुल्हा खड़े।

तुम न जाओ देखने को जो उन्हें कुछ बात है,
झांकने के ध्यान में हैं उनके सब छोटे बड़े।

है कहावत जी को भावे योंहि पर मुण्डिया
ि ह ल ा य ,
ले चलेंगे आपको हम हैं इसी धुन पर अड़े।

सांस ठण्डी भर के रानी केतकी बोली य'
स च ,
सब तो अच्छा कुछ हुआ पर अब बखेड़े में
प ड ।

दोहे

अब उदय भान और रानी केतनी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाये हुए थे फिर खिले।

चैन होता ही न था जिस एक आसन एक बिन।
रहने सहने से लगे आपुस[1] में अपने रात दिन।

ऐ खिलाड़ी, यह बहुत था कुछ नहीं थोड़ा हुआ।
आनकर आपुस[2] में जो दोनों के गठजोड़ा हुआ।

चाह के डूबे हुए, ऐ मेरे दाता, सब तिरें,
दिन फिरे जैसे इन्हों के वैसे अपने दिन फिरें।

दोहे

घर बसा जिस रात उनका तब मदन वान उस घड़ी,
कह गई दुलह दुलहिन को ऐसी सौ बातें कड़ी।
बास पाकर[3] केवड़े की केतकी का जी खुला।
सच है, इन दोनों जनों को अब किसकी क्या पड़ी?
क्या न आई लाज कुछ अपने पराये की? अजी?
थी अभी इस बात की ऐसी अभी क्या हड़बड़ी?

2रा परिच्छेद

मुंशी-स्टाइल

राय सोहन लाल कृत

हिन्द में सतयुग समां

ऐ हिंद! तेरा वह रंग कहां है?
पहला सा तेरा वह ढंग कहां है?

करतार ने तुझ को था बनाया,
वह रंग वह रूप था दिखाया,

जो फूल सा आप ही खिले था,
उस से यह बनाव कब मिले था?

वह सादी अदा निपट भली थी।
हां, सच के वह नूर में[1] खुली थी।

वह सच का समां वह सच ही की बातें,
वह चैन का दिन वह सुख की रातें,

मिलते थे जो जी से जी मिले था।
कुछ कहते तो मन से मन खुले था।

दो दिल मिले खुल के रस बरमता[2]।
इन्दर की सभा का रस दरमता[3]।

वह सोमलता के रस का पीना,
आनन्द का रूप हो के जीना।

कुछ लहर में आंख जो उठाई,
जंगल ने अदा अजब दिखाई।

वह ठंडी हवा, वह बर की छाया,
तन साफ व फूलसी थी काया।

वह सुथरी जमीन व निखरा पानी,
पेड़ों प लता के छवि सुहानी,
गंगा का वह लहर खाके जाना,
फूलों का चटक के खिल खिलाना,

चिड़ियों का वह डाल पर चहकना,
कोसों वह गुलाब का महकना।

वरकत थी वह सच को सब था भर-पूर।
हर आन में सज का था भरा नूर।

पतङ्ग

जो उड़ता है वह नीचा देखता है।

थी एक पतङ्ग चांद वाली।
सज धज वह रखती थी बस निराली।

कुछ कन्नी झुकाके झोंक खाके
ऊपर को उठी वह सिर हिलाके।

ले ढील[1] बहुत सी शह जो पाई,
आकास चढ़ी वह सिर पै आई।

देख अपना उड़ना उठान झूली[2]।

उड़ने की जो डोर थी सो भूली।

वह ऊंची जगह जो हाथ आई,
यह बात वह अपने मन में लाई।

है आज जहान में कौन ऐसा?
ऊंचा जो चढ़ा हो मेरे जैसा।

जो कुछ है सो बस मेरे तले है।
आलम है कि मेरा मुंह तके है।

यों कहती हुई वह सिर पै चढ़के,
औ, ऊंची उठी हवा में भरके।

टूटी जो कहीं वह डोर जाके,
नीचे को चली वह सिर झुकाके।

चकराती, तड़पती, फिर फिराती,
गैरत में चली वह गोते खाती।

पहुंची वह कहीं जमीन पै जाके।
ग़ारत हुई दम में लुट लुटाके।

पुरे हैं जो भारी हैं भरे हैं।
हिलते नहीं, एक जा खड़े हैं।

हलके को हवा लगी उड़ेगा।
उड़ता है सो जानिये गिरेगा।

सोने और ढोल की दो दो बातें

एक दिन बड़ा ढोल दन दना के,
कहने लगा सोने को सुना के।

दुनियां में बड़ा है मोल तेरा।
मर्दों में न निकले बोल तेरा?

रहता है बहुत दबा छिपातू।
डरता है किर्पिला बस पड़ा तू।

गढ़ गढ़ के बनायें खूब तुझको।
दें आग लगएं खूब तुझको।

पर यार सदा मज़े उठाते।
गर्दन पै सवार दन्दनाते।

यों डंके की चोट मुंह जो खोला।
सिर चढ़के यह ढोल बोल बोला।

खाली था जो ढोल डींग मारी।
पर सोना भरा था और भारी।

सोने ने सुना अनसुना किया बस।
चुप का रहा आपे पै किया बस।

पर उसकी दम ने यह जताया।
उल्लू का ऐ ढोल मांस खाया?
फिरता है हवा में भरके फूला।
भड़की जो हवा-तो आपा भूला।

बक बक लगी एक वड़ जो छुटी।
क्या सूझे? समझ की आंख फूटी।

आपे में कभी जो ढोल आता।
इस बात को आप ठीक पाता।

बस ढोल का बोल ही बड़ा है।
भीतर से जो देखिये तो क्या है?

वे मग़ज़ हो चोप कुछ बनी है।
एक खाल मुई हुई तनी है।

बे वज़न मिले यह गुल मचाया।
सिरपै चढ़ जगके सिर उठाया।

एक डंके के चोप सर जो टूटा,
सब भेद खुला वह पेट फूटा।

बस शोर था एक हवा बंधी थी।

बे जान था बात बस बनी थी।

भारी से कभी न खाई टक्कर।
कूदी किसी आग में न बढ़कर।

क्या जाने जहान में क्या है अच्छा?
सोने से कौन है और सच्चा?

जो रंग है बस कभी न छूटे।
नरमी से दबे कभी न टूटे।

जीवट का जो देखिए कड़ा है।
भारी है भरा है और खरा है।

सब की पड़े आग में उछल कर।
चक्कर बड़े खावे बस पिगल कर।

सौ आंच से बस निकल गया है।
हां, सच को जहां में आंच क्या है?

सौ बार गले वो चोट उठाये,
ज़ेवर वह जहां का तब कहाये।

चांदनी का समां और उसके नूर की झलक

वही चांद पेड़ों के पीछे उगा।
उठा लाल सा जगमगाता हुआ।

वह किरने जो फूटी अजब लाल लाल।
था पेड़ों में ऐक जगमगाहट का जाल।

उठा चांद कुछ एक अनोखा सा ढंग।
वह दम दम में उसका बदलता था रंग।

गुलाबी सा जाड़ा वह ठंडी हवा।
वह नीलम सा आकास निखरा हुआ।

वह चढ़ता था चांद और खिलता था नूर।
हुआ जगमगाहट के जोबन का चूर।

हर एक तरफ नूर एक बरसने लगा।
हर एक फूल पत्ता चमकने लगा।

कनी रात की वह दमकती हुई।
वह चांदी सी मट्टी चमकती हुई।

ज़मीं पर बिछी नूर की चांदनी।
अनोखी अदा एक जमीं की बनी।

घुले नूर से थे वह दीवारों दर।
खिला मोतिया साथ हर एक गुहर।

सपेदी पे नूर एक अनोखा पड़ा।
यह देखें कि चांदी का पानी फिरा।

कनी पै जो विखरी कहीं चांदनी।
वह चमके थी हीरे की जैसी कनी।

खड़े नूर में पेड़ नहाये हुए।
समा नूर का एक देखाये हुए।
वह झोके में पत्ते जो झूमें ज़रा।
अजब नूर बिखरे झलकता हुआ।

वह पत्तों में छन छन गिरे चांदनी।
जमीं धूप छांह कीसी चादर बनी।

पड़े गंग पर नूर की एक भरन।
गिरे लहर में झिल मिलाती किरन।

थे लहरों में एक चांद के लाख चांद।
जिन्हें देख के धूप हो जाय मांद।

था लहरों में एक झिलमिलाहट का जाल।
बिछा दूर तक जगमगाहट का जाल।

ज़मीं नूर और आसमां नूर था।
समा एक अनोखा बना नूर का।

हुनर का जिसे देख उड़ जाय रंग।

समझ सामने जिसके हो जाय दंग।

यह करतार का देख करतब ज़रा।
उठी लहर बम दिल तड़पने लगा।

यह सूझी कि ये सब उसी का है काम।
लिखा चांद सूरज पै है जिसका नाम।

बाबू हरिश्चन्द्र कृत

(विद्या-विनोद--आसिन, सम्वत् 1933 से)

दशरथ विलाप

कहां हो, ए हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़ मुझको सिधारे?

बुढ़ापे में य दुख भी देखना था?
इसी के देखने को मैं बचा था?

छिपाई है कहां सुंदर वह मूरत?
दिखादो सांवली सी मुझको सूरत।

छिपे हो कौन से परदे में बेटा!
निकल आओ कि अब मरता है बुड्ढा।

बुढ़ापे पर दया मेरे जो करते,
तो बन की ओर क्यों तुम पैर धरते?

किधर वह बन है जिस में राम प्यारा,
अयुध्या छाड़[1] कर सूनी सिधारा?

गई संग में जनक की जो लली है,
इसी से और मुझको बेकली है,

कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर?
कहाँ सीता, कहाँ वह बन भयङ्कर!

गया लछमन भी उनके साथ ही साथ,

तड़पता रह गया मलते ही मैं हाथ।

मेरी आंखों को[2] वह पुतली कहां है?
बुढापे की, मेरी, लकड़ी कहां है?

कहां ढूँ ढूँ, मुझे कोई बता दो।
मेरे बच्चों को बस मुझसे मिला दो।

लगी है आग छाती में हमारे,
बुझाओं कोई उनका हाल कह के।

मुझे सूना दिखाता है जमाना।
कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना।

अंधेरा हो गया घर हाय मेरा!
हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना?

मेरा धन लूट करके कौन भागा?
भरे घर का[3] किसने उजाड़ा?

हमारा बोलता तोता कहां है?
अरे! वह रामसा बेटा कहां है?

कमर टूटी, न, बस अब उठ सकेंगे।
अरे बिन राम के रो रो मरेंगे।

कोई कुछ हाल तो आकर के कहता।
है किस बन में मेरा प्यारा कलेजा?

हवा और धूप से कुम्हला के थक कर,
कहीं साये में बैठे होगे रघुवर।

जो डरती देखकर मिट्टी का चीता।
यह बन बन फिर रही है आज सीता।

कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।
वह फिरती है पियादे आज दर दर।
कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।

न निकली जान तक बे हया हूं।
भला में राम बिन क्यो जी रहा हूं?

मेरा है बज्र का लोगों! कलेजा।
कि इस दुख पर नहीं अब भी य फटता!

मेरे जीने का दिन बस हाय बीता।
कहां है राम, लछमन और सीता?

कहो, मुखड़ा तो दिखला जायें प्यारे।
न रह जायें हवस जी में हमारे।

हमारे राम, मेरे राम, ए राम।
मेरेप्यारे, मेरे बच्चे, मेरे श्याम।

मेरे जीवन मेरे सर्वस मेरे प्रान।
हुए क्या हाय, मेरे राम भगवान।

हमारे राम! हा प्रानों से प्यारे!''
यह कह दसरथ जी सुर पूर को सिधारे।

बसन्त

फागुन के दिन बीत चले अब ऋतु बसन्त आई,
बदला समा चली झोंके से झखी पुरवाई

गर्मी के आगम दिखलाये रात लगी घटने,
कुहू कुहू कोइल पेड़ों पर बैठ लगी रटने।

पक चले धान, पान, पेंड़ पीले, आम भी बौराने,
हुई पतझार, लगे कोपल पत्ते फिर आने।

ठंडा पानी लगा सुहाने, आलस तन आई,
फूले सिरिस फूल की खुशबू कोसों तक छाई

बागों में कचनार बनों में टेसू हैं फूले,
मदमाते भौरे फूलों पर फिरते हैं। भूले।

एक रंग पीली सरसों खेती में लहराती,
बीच बीच में कली कुसुम की फूली छब पाती।

कहिं तीसी कहिं रहर, कहीं जौ, फूले मन भाये,
गेंदे बांध कतार बाग में नया रंग लाये।

फूले नारंगी, कोला[1] औ मीठे नींबू की,
चारो तर्फ़ बाग में फैली लपट व खुशबू की।

बर्सात

सब को सुखदाई, अति मन भाई, सुन्दर वर्षा आई है,
दामिनी दमकती, चपल चमकती, नभ में अति छबि छाई है।

कासनी, चमेली, जूही, बेली, कदम वृक्ष में फूले हैं,
तितली संचारें, कर गुंजारै, भौरे जिनपर भूले हैं।

बादल रंग रंगी, सैनी जंगी, बिजली तोप तुरंगी है,
बूदों की गोली, गर्जन बोली, वर्सा फ़ौज फिरंगी है।

धूए से बादल, जल ही का बल, अनल बीजुली झेली है,
सीठी दे चलती, बेग उबलती, पावस रेला रेली है।

गरजन के तबले, मोर सरंगी, भेकताल धुनि जांची है,
बादल के कपड़े, वीजु रोसनी, वर्षा पातुर नाची है।

धम्मों को छोड़ो, गरज सुनाता, सुनता जो कि अधुरा है,
बपतिस्मा पानी दे क्रिस्तानी धन यह पादरी पूरा है।

बादल की पालें, धुएं की जालें छोड़े दौड़ा जाता है,
पावस नभ सागर, सब गुन आगर, जोर जहाज दिखाता है।

धन उक्ति सुहाई, कबिमन भाई, अर्थ बीजुली भाती है,
जल रस बर्साती, सदा सुहाती, वर्सा कविता आती है।

रंग रंग के बादल जोड़ जोड़ दल चले गरजते आते हैं,
नारंगी पीले लाल औ नीले, सावन सांझ दिखाते हैं।

कहीं कोयल बोलैं, करैं कलोलैं, कूकैं मोर सुहाये हैं,
टर्राते दादुर, बाक बहादुर, झींगुर झनक लगाये हैं,

गिर रहे करारे, नदी किनारे, जल का शोर सुनाता है,
खंडहर पै ठनकत, सांप खन कते सुनकर जी डर जाता है।

हुई रात अंधेरी बदली घेरो, हाथ से हाथ न दिखलाता,
घर से न निकलता, राह न चलता, काई न मग आता जाता।

बाबू महेशनारायण पटना निवासी कृत

(बिहार बन्धु,13वीं अक्टोबर, 1881 से)

स्वप्न

1

थी अंधेरी रात, और सुनसान था,
और फैला दूर तक मैदान था;

जंगल भी वहां था,
जनवर का गुमां था,
बादल था गरजता,
बिज़ली थी चमकती,

वो बिजली की चमक से रोशनी होती भयंकर-सी।

ईश्वर के जमाल का नमूना वां था,
ईश्वर के कमाल का खजाना वां था।

देरख्तों[1] पर जो बिजली की चमक पड़ती, अंधेरे में,

डालों के तले,
पत्तें में भी होकर,

तो यह मालूम होता जैसे हो वह सख्त[2] घेरे में।

2

पहाड़ी ऊंची एक दक्षिण दिशा में
खड़ी थी सर उठाये आस्मां में;
बलाग़त से हिमाक़त में खड़ी थी,
दरख्तो[3] के गले में एक लड़ी थी।

करुणामय परमेश्वर की वह पहाड़ी भी ज्योति प्रकाशक थी,
अजीब, अनेत, अभाष्य अगर थी तो भी लखगुण गायक थी।

नहीं वक्त, का डर, नहीं खौफ़ अजल, वह पहाड़ी खड़ी की खड़ी ही रहेगी।
हज़ारो मरे हैं, हज़ारों मरेंगे, पहाड़ी अड़ी की अड़ी ही रहेगी।

इसलिये मौत का नहीं कोई डर,
बैठ जाता है उन मनुष्यों पर

जाके पर्वत सी हर वी पहाड़ ही धाई बने है।

3

और एक झरना बहुत शफ़्फ़ाफ़ था,
बर्फ़ के मानिन्द पानी साफ़ था,

आरम्भ कहां है कैसे था वह मालूम नहीं हो;

पर उसकी बहार,
हीरे की हो धारा,
मोती का हो गर खेत,
कुन्दन की हो वर्षा,

और विद्युत की छटा तिर्छी पड़े उन पै गर आकर,
तो भी वह विचित्र चित्र सा माकूल न हो।

4

ठनके की ठनक से,
बिजली की चमक से,
वायु की लपक से,
फूलों की महक से,

वह बन में दीख पड़ता था अजाएब सा भयानक हुस्न।

झरने की बड़ बड़ाहट,
पत्तों की शनशनाहट,
कड़के की कड़ कड़ाहट,
करती थी हड़ हड़ा हट,

लड़ती थी आपुस में ईश्वर की कीर्तियां सब।

थी उजाला ज़री न उन बन में,

थी अंधेरी चमक वह कानन में,
थी जमीं मस्त काले जौबन में,
घोर रुपि निशा थी गुलशन में,

नहीं सूर्यदेव उस धुप को कभी चमका सक्ते चमका सक्ते[1],
दामिनी दमके, चपला चमके नहीं इन्द्र उसे चमका सक्ते,

महिमा ईश्वर की प्रगट इस से,
कहां पायेंगे हम, कहां पायेंगे हम।

5

वह राक्षसी उजाला

बहके हुए मनुष्य को करती है जो तबाह

मदान[2] पुर खातर में

वो भी चमक भुलावनी अपनी दिखाती थी।
जिन्दगी में बहुत ऐसी ही चमकती हुई चीज़,
जीव अनमोल को करती है हक़ीर वो नाचीज़।

जुगनूं थे चमकते डालों पर,
जस मोती काले बालों पर,
जस चंदन बिंदु दीख पड़ें
श्यामा अबला के गालों पर।

भौतिक सी कीर्ति
आती थी नज़र
व्यापार अचम्भा
देखो तो बराबर।

अजायब!
अपार!!

6

रात अंधेरी में पहाड़ी की डरौनी मूर्ति
कैफियत एक मनोहर थी वह पैदा करती–

एक कैफियत मनोहर

देखें तो होवे शशदर
सुन्दर भयंकर।
दरख्तों की हू हू, पवन की लपट,
निश मय प्रकृति वो कर्कश समय
घना घोर घुप में दमक दामिनि की
स्वरूपीय भय के समागत थे सेना,
महादेव यम राज्य स्वधीन करते

7

पहाड़ी पै पत्थर के चट्टां बड़े,
समय की सृष्टि से वां थे खड़े,

अजब, एक सनत से खड़े थे वह सारे,
ज़री सो ज़मीं पर बहुत ही किनारे;

अगर लोग देखें तो होवे यक़ीं,
कि गिर जाना उनका है मुशकिल नहीं,

वो लेकिन अगर भीम भी आनकर,
हिलावें तो टसके न एक बाल भर,

अगर नीचे जाकर कभी इनको देखें
तो मालूम होवे कि सब यह खफ़े हैं

भक्ति-रस उत्पन्न न हो जिस मन में यहां वह मन ही नहीं,
कीच बराबर जीव वह है जो मन में बिराजित यह धन ही नहीं।

8

एक कुंज,
वह गुंज,

पेड़ों से घिरा था
झरने के बगल में

बिजली की चमक भी न पहुंचती थी वहां तक

ऐसा वह घिरा था
जस दीप हो जल में

पानी की टपक राह भला पावे कहां तक।

9

सब्जे का बना था शामियाना
और सब्ज ही मख्मली बिछौना!

फूलों से बसा हवा[1] वह था कुंज
था प्रीत मिलन के योग्य वह कुंज;

परपोश हवा के रहने वाले
दिल कुश[2] वह समाज गाने वाले

रहते थे अमन से उस चमन में
आदम को मिले न जो अमन अदन में,–

आती थी उस जगह से स्वाधीनता की खुशबू;
स्वाधीनता थे दरख्त वो स्वाधीन थी गतें।

स्वाधीन सुरथे चिड़ियों के, स्वाधीन थी गर्त।
थी ग़रज वहे[2] जगह फ़हत अफ्जा।
ताजगी जी को बख्शे वां की हवा।

साया पड़ा था लेकिन सब हुस्न पर वहां के
रजनी ने काली चादर सब को उढ़ाई थी।

10

पानी पड़ने लगा वह मूसल धार
मानो इन्द्र की द्वार खुली हो।
बादल की गरज से जी दहलता
बिजली की चमक से आंखे झिपतीं
वायु की लपट से दिल था हिलता
आंधी से अधिक अंधारी बढ़ती।

11

रोने की आवाज आती है? कहां? वह
उफ्र नहीं। हां, अहा। वहां वह!

है तो कोई अबला की ध्वनि और प्रीत के रस की है माती हुई।

अबला का वहां;
भला क्यों हो गुमां?

न मनुष्य का वां था कहीं भी निशां।
तो क्या स्वर्ग को फाड़ परी वरसी है?
उस कोलाहल में ध्वनि उसकी
दबती दबती आती थी
दया, प्रेम भक्ति और हित की
ठुनुक ठुनुक के बुलाती थी--
अरे नयनों के सितारे!

"मेरे प्यारे!
अरे आरे!"

आवाज यही एक निकट कुंज से मधुर स्वर में आति थी।

13

बिजली की चमक में
रोशन[1] हुआ चिहरा
देखा तो परी है
नाज़ो से भरी है,
घुंघर वाले बाल
मख्मल के दो गाल,

तवा नाजुक प उस के कुछ था मलाल
बाल बिखरे थे वस्त्र का न खयाल;

लाव रायता गुलाबी
सूखी थी एक ज़रीसो[2]।
सून्दर कोमलता उसकी

जस तीक्ष्ण हवा उसमें हो लगी--
मानो पद्य को तोड़ पहाड़ प लाये हों।

14

मुख मलीन मृग लोचक शुष्क
शशि की कला में बहार नहीं थी;
लब दबे यौवन उभरे
रति को छटा रलार नहीं थी,
गरभ, हवस, अफ्सोस, उम्मीद,

प्रेम-प्रकाश, भय चंचल चित्त
थे यह सब रुख प नुमायां उसके,

कभी यह कभी वह,
कभी वह कभी यह,

मुख चन्द्र निहार हो यह विचार कि प्रेम करूं दया दिखलाऊं।

15

कभी मुंह गुस्से से होता लाल,
कभी सर को झुकाये वह करती मलाल,

कभी बरहम शौक़ से होता[1] था,
कभी पेहम मोती पिरोती थी,

कभी आशा से थी ललचती वह,
कभी डर से फिर थी हिचकती वह,

गर्भ से नैन कड़ी करती थी
पर प्रीत की वानी कहां छिपती थी?

अंत में आंसू गिर ही पड़ते थे
शब्द यह खुद निकल ही पड़ते थेः-

"अरे आरे
मरे प्यारे"

शब्द कि सुन के कठोर भी रोयें,
और शब्द कि चित में प्रीत बोयें।

16

दिल में उसके थी एक अजूब हलचल
आत्मा थी फड़कती औ बेकल

धीरता भी बनाती थी चंचल,
व्यग्रता आंख में थी लाती जल

प्रीत जब रोते रोते थक जाती,
वालों को वह खसोट झुंझलाती,

तब घृना से बदन को वह लखती
तब जनूं सी वह दस्त को सलती,

आखिरश होके सबसे वह मगलूब
खोल देती वह द्वारा दिल को खूबः-

"मेरे प्यारे
अरे आरे।"

17

मिलते थे जवाब दिल में उसके
नेचर की वह कुल लड़ाइयों के

बिजली जो कहीं चमकती आसमां में शायद
घबड़ाहट अधिक थी उस से उसकी जां में शायद

दिल में थी अंधियारी सारी
रजनी की नहीं वैसी अंधियारी

अंतर अंधड़ चलता था--
जी का कमल तक हिलता था

मुख चन्द्र प मेह थे छाये हुए
पर ज्योति नहीं उस की छिपती,

जस भेष मलीन में बुद्धि तीक्षण
नहीं छिपती पै नहीं छिपती--

जस लाख बरस को गुलामी से
स्वाधीन ज़मीन नहीं छिपती,

अस सोग के में से सुंदरता
उस कामिनी को[1] थी नहीं छिपती

18

एक ज़ानू उठाये एक गिराये
एक हाथ को गाल पर लगाये,

आते जो थे बाल उसके मुंह पर

सरकाती थी हाथ दूसरे से "अह" कर

आंखें--न खुली थीं और न थीं बंद
बे अक्ल हों देखें गर अक़्लमंद।

एक सादी साड़ी
पर काली किनारी
पानी से तराबोर

लहरी हुई इसनाज़ से लिपटी थी बदन में
लिपटी न कभी जैसे की खुशबू भी पवन में,
सीने का उसके वह ईश्वर दातव्य जमाल

छिपता नहीं इस से

फड़के था वह क़ैद से औ करता था कमाल

छिपने का वह किस सें?

स्वर्गीय सरलता थी उस प छाई उस वक़्त।

19

सीने की धड़क से
थर्राता बदन

बालों की फड़क से
उभरता वह जोबन,

आंखों की मटक से
थी प्रीत नुमायां,

हाथों की झटक से
करती थी वह कुर्बा--

नार अलबेली-सी बैठी थी वह जाल' की शोभा दिखाती हुई।
ओ डराती हुई ओ लुभाती हुई और पेड़ों की ललचाती हुई।

पर हुस्न का जिल्वा
उस बन में भला क्या?

अनेक हैं फूल कि जन्म लिये पर्ती में और कुम्हलाये वहीं हैं।
खिल खिलकर वह सुगन्ध सुंदर को धीरे धीरे मिटाये वहीं हैं।

अनेक हैं मोती समुद्र के गर्भ में मर्मन जिनका जान पड़ेगा।
निर्मल, नबिन, गोल, सुडौल अनेक हैं लेक पटाये वहीं है।

20

थी वह अबला अकेली उस बन में,
थी अकेली?

लाखों चिन्ता थीं जमा उस मन में,
वह छबीली

क़ाफ़ला सोग रखती थी तन में
बढ़के जब प्रीत सींच थी करती
चंचल हो[1] बेचारी रो देती
मेरे नयनों के सितारे

अरे प्यारे
मेरे आरे''

उस अधियारी में थी वह झलकती किरखा हो जस एक स्वेत खिलौना
धर्म निराश में ईश्वर आश की थी अचरज ओ चमकती नमूना।

नहीं सत्य प्रीत कभी बड़बड़ाती
नहीं गुढ़ विद्या कभी फड़फड़ाती
अवश्य फंक[2] ही चीज हड़हड़ाती,
नहीं इसलिये वह बहुत बड़बड़ाती

प्रेम की भाषा आंखों में है
नहीं गठते हुए शब्दों में है
सेकड़ो[3] मत्लब निकले थे
इन के शब्दों में अबला के
अरे नयनों के सितारे

''अरे आरे
मेरे प्यारे''

शब्द न सोचे न छाने हुए
ओ न तौले हुए ओ न ठाने हुए।

21

घन्टों रही बैठी इस तरह वह
गफलत में पड़ी हो जिस तरह वह,

रह रह के वह सांस देर गह लेना,
कह कह के यह जान फिर भी खोना

अरे नयनों के सितारे
"मेरे प्यारे
अरे आरे"

रोती थी कभी कभी वह हंसती,
रोती थी हंसी हंसी पइस की,

चिहरे प' कभी कमल था खिलता
अंतर में कभी था जी मचलता,

बारिश जो वह जार से थी पड़ती,
कांटों की तरह था बूंद गिरती,

जल से जन में ठनढक पहंची,
पर अंतरिक अन्नि उड़ भड़की।

पानी से धुआ गया वह चिहरे का गुलाब

और आंसू से भी,

पर सुर्खी नहीं गई कि थी सुर्खोए शवाब

क्यों कर कि वह मिटती?

खिल खिलाती थी बिजली हंसने पर
वायू चलती थी "आह" करने पर

स्वर्ग के मेह प्रेम थे करते
मान्सिक मेंह मुंह पर ज्यों आते

बस्त्र पानी में होके बिलकुल तर
सट गया धीरे धीरे कुलतन पर

भींगा जोबन ओ कुछ निराला सा
एक अजब ढब से देख में आता,

जब मचकर वह खोलती आंखे
शून्य मय देख मूंदती आंखे।

अंधकारी से आंखे झिपती थीं,
खोलने से नहीं वह खुलती थीं।

मेह बिजली, हवा व अंधियारी,
वारिश, औरवां की कतियां[1] सारी।

थी समझती उसे तमाशा सी,
देख पड़ती थी गो वह अबला सी।

बस तमाशा ही थी समझती उसे
भक्ति अबला की थीं न करती उसे।

थी वह बे उनसों में वहां, ऐसे
प्रीत पत्थर हृदय में हो जैसे।

देर तक बस यही समा ही रहा,
परन उसकी जबां से कुछ निकला।

न वह बाप न मां,
न राजभवन न सहेलिन गण,

न प्यारी सखियां कोई,
दिग धारन के बुझावन हारे,

जी थक जांय न थे पर कोई।
थी तो अबला कहां तलक रोके?
ताकने वह कभी जो रो रों के।

खाब गफ़लत की नींद टूट गई।

धीरे धीरे वह खुद को कहने लगीः--

22

"क्या है यह अहा हिंद की जमीन?
होगी तो ज़रूर यह स्वाधीन,

चन्द्र लोक से आई हूं मैं जहां धीनता की है बड़ी ही बड़ाई

राजा तो यहां यहीं के होंगे,
वां तो हैं बिदेसी राज करते,

सब कार्य विदेशि ही करते हैं वां ओ विदेशियों की है बड़ी प्रघटाई।
संतोष वहां भी है आशा देती
सीखो तो करोगे राज तुम भी,

सीखें जरूर सिखावें जो कोई पर द्रव्य कहां कि जो देवें सिखाई

वह लोग तो हैं नहीं सिखाने के
कहते हैं करोगे तुम यह मिहनत काहे

कुछ और जो बोले तो कूढ़ पड़े और कहने लगे कि है कैसी ढिठाई।

अच्छा है यही, हमेशा सिर का झुकाना[1],
बे[2] काम का काम मोल लेना,–

होंगे फंसे यह जंजाल में यां सब, स्वाधीनता में है कौन मिठाई?

रुपये तो यहां के यांही रहते होंगे?
और यां के भले में सर्फ़ होते होंगे?

वां तो जमा भी नहीं होते, कि हैं कर लेते वह अगोड़[3] बटाई

हम लोग हमेशा चुप ही रहते हैं वहां,
और आज जो पूछा रूपये सब यह जाते हैं कहां?

तो कहते हैं वह कसमें खा खा कि हैं करते हम इस्से तुम्हारी भलाई।

23

यां तो वे वजह लड़ाई नहीं होती होगी?

हाथा पाई तो हवा पर नहीं होती होगी?

रऐयत आनन्द में, हमसाए अमन में होंगे?
वां तो कहते है कि मंगल के बड़े जुल्म होंगे,

ऐसे अनेक कारण बतला वह मचाते हैं बस घोर लड़ाई

राज भक्ति तो यहां खूब ही होती होगी?
राज भक्त वां भी है पर उन पै है तुहमत यह पड़ी–

अति भक्ति है चोरों का लक्षण, गूढ़ता काली है भक्ति में समाई

समाचार पत्र यां के होंगे स्वाधीन?
जबां उनकी काहे गई होगी छीन?

देशी समाचार पत्र हैं वां भी पर बंद है इनकी स्वाधीन छपवाई

रऐयत तो यहां रहती होगी अपना हथियार
हमलोगों के पास वां नहीं है एक तलवार

है हमलोगों को उन की यह भक्ति, कि दे के सब अन्न स्वाधीनता ही गवाई

आशा है बहुत वह हम को देते
आशाओं प हमसे काम लेते

वादा जो खिलाफ़ हो कहें वह
''आया है नहीं अभी समय वह,

धीर धरो फल पाओगे तुम, क्या है अभी उम्र तुम्हारी गंवाई''

24

"सच है यह, प–ऐ मैं बकती क्या हूं?–
यह कहके वह कामिनी हुई फिर बेचूं,

तकने लगी डर से फिर वह वृक्षों को,
हटने लगी फिर समझ मनुष्य इन को,

थर्राती थी भय से वह न जाने क्यों?–
डरते है सन्मुख में दुष्ट मुन्सिफ के ज्यों,

डरती थी वह पेंड़ों की भी हू हू से,
लड़ती थी न जाने वह हवा में किससे,

झूड़ों में कभी थी जाके छिपती,
पेड़ों में कभी थी जाके अड़ती,

लेती कभी पत्थरों को वह उठाकर,
फेंके थी हवा में फिर घुमाकर,

गिरती जो थी जाके यह जमीं पर
आवाज जो होती थी कहीं पर

"कैसा[1] लगी? बस वहीं वहीं तक,
बढ़ना नहीं बर्ना फोड़ूं सरतक"
चिहरे से थी लापरवाही एक नुमायां
"लोगे तो बला से लोगे तुम मेरी जां,
प्यारे ही से हुई हूं जब जुदा में
फिटकार यह जान ताफ़[2] यह जिन्दगी में,
जाती तो कभी नहीं मैं जाने की हूं,
बिहतर हो कि कारावास मारकर जाऊं,
तो लोग भी चन्द्रलोक के यह देखें,
अब तक वहां इस तरह की औरतें हैं–
फिर रोके लगी पुकारने वह,--
"इमदाद को मेरी आब लोगी।"--
"अरे प्यारे
मेरे आरे"
"यह कहकर जमीं पर वह ग़श कर
गई। कहे तू कि जीते ही जी मर गई"

25

देर[1] तक वह पड़ी रही यों ही,
हिलने की शक्ति तक उसे थी नहीं,
सांस चलती थी जान थी लेकिन,
था अस्थिर बेतरह उसका तन।
थी पड़ी वह बेचारी पत्थर पर,
सोती थीजो कि फूल सेज्यापर।
पत्थर ही वां था जिसका तकिया तना,
प्रीत के गोद का यह रक्खा हुआ;

सर पड़ा था वह सर्द पत्थर पर,
थी पड़ी धर्ती के गले लग कर।
आग़ोश में सर्द वह पड़ी थी
जो हार गले की थी किसी को[2]।
जाये थी वहां वह सारी जोबन,
जोबन कि किसी की होगी जीवन।
वह बाल जो थे समान काले,
वां थे न कोई डसाने वाले।
पत्थर वो पहाड़ वो दरख्त थी,
दिल में न किसी के प्रीत कुछ थी।
मूर्छा नहीं जाती
जीवन उसकी देखकर।
दया नहीं आती?
अवस्था उन की नजर कर।
जिन्दा मुर्दा की तरह पड़ी थी,

मुर्दा जिन्दा की शकल बनी थी।

"कारावास" और "चन्द्रलोक" और वां के सारे लोग बेचारे।

हाय! ओफ़! अह! छी!
अरे आरे
मेरे प्यारे!"

यह सब शब्द उस कामिनी के मूर्छित लब से निकलते थे।

कह कर वह कभी
"अरे आरे
मेरे प्यारे!"
निद्रा ही में हंसती।
इन शब्दों के सोंच से
मिलती थी खुशी
होश नहीं गो करार थी
आती थी हंसी।

तसवीर सी थी पड़ी वहां वह,
सांसों की भरी पड़ी थी वां वह,

पानी जा पड़ा तो होश आया।

मूर्छा गई टूट जोश आया।

पर एक तरह की अजब घबड़ाहट थी।
जैसे स्वप्न भयानक देखा हो,

जेसे स्वप्न का चित्र अभी जागी जबीं से मिटा न गया हो।

सोते हुए वह होश
आखिर हुए जमा सब।
पहिले की भूली बातें
आने लगीं याद सब सब।

27

"अवश्य नयन स्वप्न ही में थी टेढ़ी"
वह कामिनि धीर से कहने लगी

"बेशक यह तो है हिंद की धरती।
अत्याचार की यां है नहीं बढ़ती।

सुध में वक्तृता यां पकड़ाती नहीं किसी को।
डर है नहीं किसी का जी चाहे जो सो बोले।[2]

तोबाह कहां है राजा के सिपाही?
आते थे मुझे पकड़ने को कहां जी?

जाती थी मैं कारावास क्यों कर ?
मरती थी कहां मैं किस से लड़कर?

चन्द्र लोक की हूं मैं निकाली
है अत्याचार जहां भारी।

यह कह कर लेक ख्याल आई जो दिल में,
भींगी थीं उसकी नयन वां जल में।

रोलाई में बाल को श्र्माती[2] थी वह।
उदासी सदा से बोलाने लगी वहः--

"अरे आरे
मेरे प्यारे"।

28

दरख्तों को फिर वह सुनाने लगी
बहुत रोके यह अपनी जीवन कहानी।

"चन्द्र लोक है देस मेरा वी' एक अमीर की कन्या हूं कुमारी

कुमारी नहीं कुमारी, हां कुमारी ही हूं मैं"।
सांस एक लेके "ओह क्या कहूं मैं,

समझो तुम्हें जोबूझ पड़े, पर मैं एक विधवा हूं कुमारी।

माता नहीं हमे हैं।
जीते मेरे पिता हैं।

जौं आंख खुली मेरी उस भूमि में तौही वह बेचारी जहांन से सिधारी

एक दूसरी माता शीघ्र आई,
पर मेरे लिये न प्रीत लाई।

सच है मैं प्रती के योग नहीं, आशा इसकी है यह भूल हमारी।

यां तो लड़की कभी ऐसी नहीं होती होंगी?
प्रीत के योग वे माता के यह होती होंगी।

सोलह वर्ष तक यों ही रही और प्रीत के बिन रही जीवन अंधिआरी

एक दिन शुभ अशुभ मुहूर्त में बैठी मैं थी,
कोठे प झुकाए सिर को झंकती मैं थी।

दैबात उधर से एक युवा आ निकला
और देख दया से चाहने मुझको लगा।

29

उस दिन से हुई गले की उसकी मैं हार,
और खूब ही मैं भी उसको करती थी प्यार।

मिलती थी मैं रोज उससे जा एक बन में,
फिरती थी मैं साथ उसके उस कानन में।

थे बीतते दिन इसी तरह से,
वह प्यार के दिन, अहा! इसी तरह से।

दुनियां से हमें नहीं था कुछ सरोकार
हम उसके हमारा था वह संसार।

बेलों के वह झूड़ों में देखा के छिपना,
मुख चुम्बन बाद फिर बन से निकलना,

नयनों की चमक को देख उसकी जीती मैं थी,
आगोश में उसके जाके फिर भी जीती मैं थी।

वह था हम से खुश,
हम थे उस से प्रसन्न,
दिन थे मेरे खुश,
मन थे मेरे प्रसन्न।

बड़े बहार के दिन थे वह, हाय बीत गये!
वह दिन कि शौक़ से कटते थे, हाय बीत
ग य !

मेरे प्यारे कहां?
वह सिधारे कहां?
वह दिन हैं कहां?
वह बन है कहां?

प्रति ध्वनि ने जवाब दिया ''कहां''?

30

रोने लगी कहके यह वह अबला।
हिलने लगा गुप्त तार दिल का।

याद आये जो प्रीत के वह दिन थे,
चिल्लाती थी कहके ''अरे प्यारे''

उस बन में ख्याल उस की भरते

फिरती थीजहां कभी खुशी से।

उस यार के साथ जो था छूटा,
था नाता प्रीत का यह जिससे टूटा।

एक बोझ बहुत गिरां थी जी पर यों
पत्थर हो चपां कपास पर ज्यों।

जब ढेर से चिन्ता के कहती थी कुछ तब होती थी हल्की बोझावट भारी।

31

फिर कहने लगी सुनो दरख्तो!
रोओ यदि रो सको दरख्तो!

यां की दरख्त रोयगी काहे को? अबला की यहां नहीं ऐसी खराबी
पुष्प वृष्टि होती है यहां, और प्रीत की राह चिकनी है सारी।

हम लोगों की प्रीत सुवप्र[1] एक थी,
नींद अथवा भूल या हेमाक़त एक थी।

थी कैसे मजे की हाय वह नींद!
टूटी प बहुत ही जला टूटी हाय वह नींद।

एक रोज पिता ने हमको देखा,
उस प्यार के साथ बन में तनहा।

भूलूंगी नहीं उस दृष्टि को हर्गिज छाई जिससे जीवन पर अंधियारी।

प्यारा मेरा जिस घड़ी हुआ मुझसे जुदा
समझा कि कुमारी ही हुई मैं विधवा

कहते हुए बाप ने मुझे पकड़ा
"तू बेहया है घर को जा अभी जा।"

और दातों प दांत मसमसा के बोले
"कुछ तू भी ज़हेज़ में अबे ले"।

कह कर यह लगाई ऐसी चपत
धड़ वह गिर सो[1] बेहोश चम्पत।

मैं भी हुई शन से मूर्छावत।
लाय मुझे वह उठा मकां पर।
छोड़े उसे मुर्दासा वहां पर।

जब होश हुआ माता ने कहा अब होगी एक अस्सी बरस वाले की प्यारी।

32

दिनों तीन चार पाई पड़ी।
फिरबहुत दिन जनूं सो रही।

शक्ति चिन्तना की भी न थी बाकी।
याद पहिले की वादांत न थी

खाब गफ़लत में चैन से सोती
लोग कहते कभी पुकार उठती
(पर मुझे याद है नहीं कुछ भी)

अरे प्यारे
मेरे आरे

इसके परे जब होश हुआ तो दिमाग में थी गोरख धंधारी।
सोई थी जबतक थी मैं कुमारी और उठी तो हो गई शादी हमारी।

हाय शादी हुई थी
बेहोश मैं जब थी

मैं सोलह बरस की
वह अस्सी बरक के

देख इनको मैं रोती
देख हमको वह हंसते

क्या करो मुझे प्यार करो माता ने बनाया है तुमको हमारी
मैं हूं अमीर मर जाऊंगा जब तब दौलत होगी हमारी तुम्हारी,

मर ही गये वह बिचारे उसी दिन हो गई मैं विधवा पर कुमारी
माता मेरी संतुष्ट हुई और घर लाई वह दौलत सारी।

बाद इसके वह जिंदगी मेरी
ग़म गीर दिल प एक पहाड़ हुई

पास मेरे नहीं थी मौत आती
वह बेचारी थी हम से शर्माती

एक बरस गम का योंही बीत गया
पर नहीं दिल हुआ जरा हल्का

एक दिन बैठ यह ख्याल आया
ख्याल क्या आया एक जवाल आया।

कि योगिन बन के बिभूत रमा और कहके मैं "हा"! पितृगृहि से सिधारी

वां से निकली तो फिर गई बन
वही बन जो कि फिरता था मन मन

धूमने मैं लगी इधर वो उधर
कि एकाएक पड़ी नजर - किस पर?

ज्यों ही बिछुड़ी सी थी, मिली जाके
नोच डाला पिता ने फिर आके

जोर से और घुमा के दे चक्कर
शून्य में फेंका यां गिरी आकर।

"हाय वह देश चन्द्र लोक मेरा!
हाय प्यारा मेरा कहां है पड़ा।

हाय जब वां से मैं निकाली गई।
हाय तब बिजली मुझ प क्यों न गिरी?"

ज्योंही यह कलाम निकला था कि शन
स
बिजली त्यों ही गिरी प हम चौंक उठे

कहानी मेरा, प्यारे पढ़ने वाले
सब स्वप्न ही था जो देखते थे।

मौलवी अलूताफ हुसेन दिल्ली निवासी कृत

("एक बेवे की मुनाजात" से)

ऐ अच्छे और बुरे के भेदी।
खोट[1] के और खरे के भेदी

छिपी ढकी के खोलने वाले।
बुरी भली के तौलने वाले!

भेद दिलों के जानने वाले।
पाप और पुण्य के छानने वाले

ऐब और गुण सब तुझ प है रोशन।
पाप और पुण्य सब तुझ प है रोशन।

ऐब न अपना तुझको जताना,
है दाई से पेट छिपाना।

मैं नहीं आखिर पाक बदी से।
बनी हूं पानी और मिट्टी से।

तूने बनाया था मुझे जैसा,
चाहिये था होना मुझे वैसा।

बस हमें जितना तूने दिया है,
उस से सिवा ताकत हमें क्या है?

कान, और आंखें, हाथ, और बाजू,
जिन जिन पर था यहां मुझे क़ाबू,

सब को बदी से मैंने बचाया।
सब को खुदी से मैंने हटाया'।

उठते बैठते रोका सबको
सोते जागते टोका सबको।

हाथ को हिलने दिया न बेजा
पांव को चलने दिया न टेढ़ा।

आंख को उठने दिया न इतना,
जिससे कि पैदा हो कोई फिला।

कान को रखा दूर बला से,
ऊपरी आवाजों की हवा से।

रोक के और यों थाम के आपा।
मैंने यह काटा अपना रंडापा।

एक न संभला मेरा संभाला,
था बेताब जो अंदर वाला।

हाल करूं मैं दिल का ब्यां क्या?
हाल है दिल का तुझसे निहां क्या?

धूप थी तेज और रेत थी तसी,
मछली थी एक उस में तड़पती।

जान न मछली की थी निकलती,
और न सरसे धूप थी टलती।

गो दम भर इस दिल की लगी ने,
ठंडा पानी दिया न पीनें।

तू है मगर इस बात का दाना।
मैं ने कहा दिल का नहीं माना।

जोर था मेरा दिल प जहां तक,
मैंने संभाला दिल को वहां तक।

थामना दिल का काम था मेरा,
और थामना काम था तेरा।

पकड़े अगर तू दिल की खता पर,
मैं राजी हूं तेरी रज़ा पर।

रख तकलीफ़ में या राहत में,
डाल जहन्नुम या जिन्नत में।

अब न मुझे जिन्नत की तमन्ना,
और न खतरा कुछ दोज़ख़ का।

आयागी जिन्नत रास कब उस्की?
जलने में जिस्की उम्र कटी हो।

डर दोजख का फिर उसे क्या है?
जिसने रंडापा झेल लिया है।

पर तुझसे एक अर्ज़ है मेरी।
रद न हो दग्रह में तेरी।

जो क़िस्मत ने मुझ को दिखाया।
खुश नाखुश सब मैंने उठाया।

मुझ नाचीज को है क्या ताकत?
जो मुंह पर कुछ लाऊं शिकायत।

उम्र बहुत सी काट चुकी हूं।
यह दिल भी कट जायेंगे जौं तौं।

अपने लिये कुछ कह नहीं सक्ती।
पर यह कहे बिन रह नहीं सक्ती।

मैं ही अकेली नहीं हूं दुखिया
पड़ी हैं लाखों पर यही बिपता।

बस के बहुत यहां उजड़ गये हैं।
बन के सहस्रों बिगड़ गये हैं।

जलें करोड़ों इसी लपट में।
पदमों फुंकी इसी मर घट में।

बालियां एक एक जाति की लाखों,
व्याहियां एक एक रात को लाखों,

हो गईं आखिर इसी अलम में,
काट गईं उमरें इसी ग़म में।

सैकड़ों बेचारी मज़्लत में,
भूली नादानें मासूमं,

ब्याह से अनजान और मंगनी से,
बनी से वाक़िफ़ और बनी से,

माओं से जो मुंह धुलवाती थी,
रो रो मांग के जो खाती थीं,

थपक थपक थे जिनको सुलाते,
घुड़क घुड़क थे जिनका खिलाते,

जिनको न शादी की थी तमन्ना,
और न मंगनी का था तक़ाजा,

जिन को न आपे की थी सुध कुछ,
और न रड़ापे की थी सुध कुछ,

भली से वाक़िफ़ नहीं बुरी से,
बिदा से मतलब था न बरी से,
रुखसत चाले और चौथी को,
खेल तमाशा जानती थीं जो,

होश जिन्हें था रात न दिन का,
गुड़ियों का सा ब्याह था जिनका,

दो दो दिन रह रहके सुहागिन,
जन्म जन्म को हुईं बिरोगिन।

दुलहा ने जाना न दुलहिन को।
दुलहिन ने पहचाना न सजन को।

दिल न तबियत शौक न चाहत,
मुफ़्त लगाली ब्याह की तोहमत।

शर्त से पहिले बाजी हारी?
ब्याह हुआ और रहीं कुवारी?

शैलानी जब बाग़ में आए,
फूल अभी थे खिलने न पाए।

फूल खिले जिस वक़्त चमन में,
जा सोए सनानी बन में।

पीत न थी जब पाया पीतम,
जब हुई पीत गंवांया पीतम।

होश से पहिले हुई हैं बेवा,
कब पहुंचेगा पार प' खेवा?

ख़ौर से बचपन का है रंड़ापा,
दूर पड़ा है अभी बुढ़ापा।

उम्र है मंजिल तक पहुंचानी,
काटनी है भरपूर जवानी।

शाम के मुर्दे का है य' रोना,
सारी रात नहीं अब सोना।

आई नहीं दुनिया में एलाही।
ऐसी किसी बेड़े प' तबाही।

आई विलकती गई सिसकती।
रहीं तरसती और फड़कती।

कोई नहीं जो ग़ौर करे अब?
नब्ज़ प' उनकी हाथ धरे अब?

दुःख उनका आए और पूछे?
रोग उनका समझे और बूझे?

चोट न जिनके दिन प' लगी हो,
वह क्या जानें दिल की लगी को?

बददों से पड़ा है पाला।
तू ही अब उनका है रखवाला।

अपनी बीती है यह कहानी।
अब यह धान रहे बिन पानी।

2रा परिच्छेद

पण्डित-स्टाइल

बाबू लक्ष्मी प्रसाद मौजे मानपुरा जिला मोजफ्फ़रपुर निवासी कृत

(बिहार बन्धु, 6 दिसम्बर, 1876 ई. से)

हाय! पीड़ित न रहे, जी मेरा किस भांत निदान
ह्रदया जाय ददर क्यों न निकलने प', हो प्रान।

शोक-सागर में भला डूब न क्यों लुप्त हो ज्ञान।
मित्र बैरी पड़े बूझ, अपना पराया, अनजान।

देश को हो य' दशा, और य' गत लोगों की।
बिना संदेह, है, मारी गई मत लोगों की।

2

हाय छन न बिसरता है तेरा दुख मन से,
ले गया कौन बदल सोने के घर को बन से।

किसलुटेरे को हुआ राज तेरे अन धन से।
कौन सा रोग गया, तुझ में समां, यों सन से।

आर्यावर्त! तू, क्यों करती है, दिन रात विलाप,
कौन से क्रूर ह्रदय ने, य' दिया है संताप।

3

दुर्दशा, तेरी है, जब ध्यान में आती इकबार,
आंसु, आंखों में उमड़ आता है, बंध जाता है तार।

सोंच यों व्यग्र, है करता, कि न रहता है विचार,
सर्वथा जी से, विसर' जाता है जग का व्यवहार।

सोना स्वप्न होता है, अच्छा नहिं अन लगता है,
शोक की आग से भस्म हाने, बदल लगता है।

4

एक दिन वो थे कि था नाम तेरा ही निकला।
तेरिही जीत की हर देश में, फिरती थी धजा।

थी न अन धन कि कमी, सब हि सब था पूरा।
आंख, जिस ओर को उठती थी, उधर सब कुछ था।

यां, जो शोभा थी, कहीं देख नहीं पड़ती थी।
अप्सरा स्वर्ग से आने के लिए मरती थी।

5

है कहीं नाच, कहीं गान का बंधता है समा,
कहिं है, ब्याह की हलचल, कहिं जग है ठनता।

कहि मुनूड का है, उत्साह, कहीं है अर्चा,
जौन दिस देखो, वहीं हर्ष का, है रंग जमा।

शोक को, ठांव न मिलती थी कहीं रहने की,
शोक का, काम तलक, नाम न आता था कभी।

6

एक मंदिर है, कि, है जिस प' कलस सोने का,
सर्वथा रन्न जड़ित दूसरा आलय, है, खड़ा।

एक से एक सरस, एक से एक, है अच्छा।
किस को मुंह है कि जो, वर्णन करे उनकी सभा।

बुद्धि की लीक अटक जाय, उन्हें देखे से,
विश्वकर्मा कि भी आंखों को चका चोंघ लगे।

7

हाय! वह राज हुआ क्या, नहीं मिलता है, पता,
कहां वह लोग हैं, जिनको न कभी थी चिन्ता,

वा दिवस क्या हुए, जिनमें कि, सदा उत्सव था।
बुलबुला सा, कहां, वह घर गये, एक बार, बिला।

स्मरन, जी में जब इन सभ का, कमू आता है,
बदले, आंसू के, इन आंखों से लहू आता है।

8

उठ गई सम्मति आपस में न कुछ मेल रहा
जी में, लोगों के, लिया, द्रो ह ने घर अपना बना।

एक से एक को निर्मूल, गया हो खटका,
भाई बेटे का, न विश्वास, कोई करता था।

शस्त्र चलने लगा, बातों प' ठिकाना न रहा।
एक दो खोये बिना, कोई घराना न रहा।

9

ये, अहंकार के मद से, यहां उन्मत, सभी,
शत्रुओं की, हुई, मनकामना बस वां पूरी।

अकस्मात, ऐसे उमड़ आये, कि सांवन कि नदी,
काल प्रेरित, जो, भिड़े उन से गई, जान, उनकी।

लुट गया देश, हुआ नास, धन और सरबस का,
राजा और रंक में, अंतर, नहिं तिल मात्र, रहा।

10

जहां मंदिर, थे, खड़े, वां प, हैं कांटे उपजे,
बस्तियां, बस गईं शृगाल, खर और सूकर से।

यां' कि लोगों कि दशा, कैसी थी, क्या कोई, कहे,
लेखनी का हिया, फट जाय, जो लिखने बैठ।

आठ पख उनका असह दुख देख घटा रोती है,
सूर्य को ताप-ग्रसित छिन्न छटा होती है।

योगी

"बन है सुन सान देखिये क्या हो,
पथ का मिलता नहीं पता मुझको।

सूर्य भी अस्त होने वाला है,
थोड़ी ही देर तक उजाला है।

बदि है रात होगी अंधियाली,
काश में छाई है घटा काली।

वायु भी वेग युक्त चलता है,
त्रास के मारे जी दहलता है।

ऐं! भला कौन है वहां प' खड़ा,
जाउं देखें तो है वोह क्या करता।

मिले पथ का कदापि उससे पता,
दे निकले की राह कुछ बतला।"

इतना कहकर पथिक वहां प' चला,
था जहां एक मनुष्य शांत खड़ाा।

जा निकट, जान योग का साधक,
पूछा सनमान युत झुका मसतक।

"आप हैं कौन, यां' प' करते है। क्या?
इस समय बन में यों बिचरते हैं क्या?

किस लिये बन गये जटा-धारी?
क्यों भभूत अंग अंग में सारी?

किसके मिलने का योग साधा है?
आप के सुख का कौन बाधा है?

रहता है किसका ध्यान नित मन में
कौन सा नाम जपते हैं बन में?

किस लिये नाम ग्राम त्याग किया?
हो गया क्या है, क्यों बिराग किया?

किस की, जी में, छटा समाई है?
किसलिये यह दशा बनाई है?

रात दिन किस का साग रहता है?
क्यों इन आंखों से नीर बहता है?

कुछ पथिक पर कीजियेगा दया?
सूनते कुछ आप हैं, मैं कहता हुं क्या?

मार्ग मिलता नही है कानन में,
क्या करूं जी पड़ा है उलझन में।
जाऊं किस ओर कौन ठांव रहूं,
यदि अपनी कहूं तो किससे कहूं।

आप पर कुछ है या' का भेद खुला?
कौन पथ है सुगम बताइयेगा?--

है "कठिन पथ, निशा है अंधियाली,
पड़ी नभ पर घटा की है जाली।

शब्द धन का गगन में होता है,
त्रास सुन सुन के मन में होता है।

दिमिनी जब-न तब दमकती है,
नेत्र में तिरमिरी सी' लगती है।

बन सिवा कुछ न है कहीं यां पर,
नाम बस्ती का है नहीं यां पर।

योजनों तक न है सदन कोई,
पांव रखता है यां न जन कोई।

विधि प्रेरित कोई जो आता है,
काल के मुंह में त्रान पाता है।

होता है बाघ सिंह का पकवान,
फंसता है राक्षसों के पास, में आन।

दला जाता है गज के पांव तले,
मारा जाता है भालु शूकर से।

कुछ करे पर न जान है बचती,
ग्राम का मुंह न देखता है कभी।

वोह दहन है अभी जो देख पड़ा,
है छली राक्षसों के मुंह की प्रभा।

दिन को आठों दिशा बिचरते हैं,
माया रातों को नित्त करते हैं।

पर कुटी मेरी है निकट यां से,
चलो रह जाओ आज साथ मेरे।

चैन से रात भर करों विश्राम,
प्रात पश्चात खोजना घर ग्राम।

योगी[1]

इतना कह, कर में ले कमंडल को,
चला चुप चाप ताल तट जल को।[2]

नीर ले तीर पर उपस्थित हो,
कह उठा "मेरे साथ साथ चलो"।

अब जो वृक्षों के ओट से होकर,
कोई देखे तड़ाग के तट पर,

दृष्टि आवेंगे, रात के पट से,
वेग संयुक्त, दो मनुष्य चलते।

आगे योगी था बाट बतलाता,
था बटोही परे परे जाता।

जब कुटी के निकट, वो' आ पहुंचे,
कहा योगी ने यों बटोही से।

"यही आश्रय है मेरे रहने का।
यहीं करता हूं, योग, जप, पूजा।

यहीं रहता हूं, ध्यान में तत्पर,
यहीं करता व्यतीत हूं, अवसर।

यहीं करता हूं, अन्न औ जलपान।
यहीं होता है, मुझको सांझ विहान।

यहीं धन, धाम, है, मेरा यां पर,
सेवता हूं इसी को, आठ पहर।

अब यहां तुम खड़े रहो, छन मात्र,
जल तलक आउं मठ में रख जल पात्र"।

इतना कह, खोल द्वार मंदिर का,
हाथ में जल लिये, प्रवेश किया।

रख के जल-पात्र, आग को सुलगा,
दीप को बाल कर, धुनी को जगा,

पुनि आया जहां खड़ा था पथिक,
चाल रोके हुए अड़ा था पथिक।

कहा-"बस तात! अब चलो भीतर,
खाओ फल, सो बिताओ चार पहर।

रात सिर पर है, घोर है कानन,
घात में फिर रहे है।, राक्षस गण।

यदि कोई यहां प' आन पड़ा।
होगा निश्चय, विनाश हम सब का।

दिन निकलने प' हो जहां जाना
देखते भालते वहां जाना।

मुझ से भी जो सहायता होगी,
दूंगा, मोडूंगा मुंह न तुम से कभी।

अब है कारण बिलम्ब का, फिर क्या?
किस विषय का है मन में सोंच बंधा?

क्यों हिचकते हो, यां' के रहने से?
कुछ कहो भी तो, मेरे कहने से?

ऐं! सुसकते हो क्यों हुआ है क्या?
स्मरण चित्त में आ गया किसका?

जी में है कौन दुख किये डेरा?
कौन से व्याघ ने है आघेरा?

किम का है त्रास यों किसे जर जर?
कौन सा गाढ़ आपड़ा, सिर पर?

अपना ब्योरा तो कुछ कहो चल के,
मठ में इस काल तो रहो चल के''

इतना कह हाथ को पथिक के पकड़,'
चला आश्रम में, साथ ले, सादर।

''आह! क्या स्वप्न देखता हूं मैं?
नहीं सचमुचहे यह, जगा हूं मै।?

आयगी बन में किंतु क्यों नारी?
कल्पना मेरी झूठ है सारी।

इतना फिर नर के कर में कोमलता?
डंगलियां ऐसी पतली, मानो लता?

हो न हो, है अवश्य कर अबला!
अभी जाता है जी से मिट दुबधा''

ये ही बातें थी जी में योगी के,
उमर आईं, पथिक का कर गहते।

अति चिंतन का पर, न था अवसर,
इतने में जा पड़ा कुटी भीतर।''

दे धुनी के समीप, एक आसन,
यों सुधा सम, सुधारा मुख से बचन।

"अब सुचित हो, कहो तो कुछ अपनी
क्यों हो रोते, है आपदा कैसी?

घर के छुटने कि, जी में है चिंता?
सम्पदा हो गई है हान, अथवा?

या किसी मित्र से बिगड़ बैठे?
जो न करना उचित था कर बैठे?

हो किसी कामिनी प'या मरते?
है कलेजा छिदा नयन सरते?

किस का घर आज तक हुआ संसार?
लक्ष्मी किस की है? करो तो बिचार।

मित्र है धन के पद्म के मधुकर।
श्री गई उड़ गये कपूर हो कर

फेर कोई दम भरे, तो क्यों उनका?
मित्रता तो है नाम एक बांका।

प्रीत क्या है? समूह संकट का।
प्रीत क्या है? प्रहार और झटका।
प्रीत लाती सवांग नट का।
प्रीत से क्यों न ही को हो खटका।

प्रीत धुन हो कलेजा खाती है,
प्रीत बन चोर, मन चुराती है,

प्रीत हो मित्र भेद है लेती,
प्रीत कर द्रोह, कष्ट है देती।

प्रीत तरूणी हो, जी लोभाती है,
प्रीत बन डाकिनि डराती है,

प्रीत खिलती है हो कली, बन में,
प्रीत कांटा हो चुभती है तन में।

प्रीत का रूप किस को लख आया?
प्रीत का अंग किसने है पाया?

प्रीत की रीत है सभी, न्यारी,
प्रीत की चाल भिन्न हैसारी।

प्रीत डसती है, हो कभी अजगर,
प्रीत हो प्रेत, चढ़ती है सिर पर।

प्रीत का घाव है नहीं भरता,
प्रीत के रोग की न कुछ है दवा।

प्रीत के विष का है उतार नहीं।
प्रीत के डंक का है, झार नहीं।
प्रीत कब कब हुई है सुखदाई?
प्रीत कर किसने श्रेष्ठता पाई?

प्रीत कब किसके काम है आई?
प्रीत की टेव किस को है भाई?

(प्रीत के हाथ, क्या मिला नल को?
कौन सरबस भला मिला नल को?

प्रीत करने से क्या दमन को हुआ?
कौन उत्साह उस के मन को हुआ?)
प्रीत के पेड़ का बुरा फल है,
प्रीत अमृत नहीं हलाहल है''

वाक्य यां' रुक गया तपस्वी का,
जी उमड़ आया, आगे बढ़ न सका

चेष्टा बस उतर गई मुंह की,
आंख भर आई, अपनी सुध न रही

रोंगटे हो गये खड़े तन पर।
चौंक उठा बैठे बैठे आसन पर।

पुनि पूछा पथिक से, ढारस धर,
''हां! तो फिर मेरी बात का उत्तर?''

यां से उत्तर दिशा, है एक बस्ती,
जान्हवी तीर पर, विचित्र रची।

छबि, किस मुंह से, उस कि हो वर्णन,
स्वर्ग है उसके सामने, कानन।

परमोदार वां का, है राजा,
तनया उस कि हूं में चन्द्र-कला।

एक ही अपने बाप की हूं मैं।
लाड़ औ' प्यार की पली हूं मैं।

राज मंदिर में, राजती नित थी,
सभी कुछ प्राप्त था, सुखी-चित थी।

घर के बाहर न, पांव थी रखती,
सदा रहती थी हर्ष रस में पगी।

मंह प' दुख का न नाम आता था,
शोक द्रोही नहीं दबाता था।

जी में, चिंता जगह न पाती थी,
कभि तन पर, न आंच आती थी।

मोदक इत्यादि, भोज्य था मेरा,
पान करने को जान्हवी-जल था।

पुष्य शय्या प' कर बदलती थी,
थक गई, दस कदम जो चलती थी।

बैठे बैठे जो जी था घबड़ाता,
स्मरण बाटिका का था आता।

वहां जाकर कलोल करती थी
छन यहां छन वहां, विचरती थी

कभि छिपती थी कुंज में जाकर
कभि करती थी आ बाहर।

कभि तालाब में नहाती थी,
कभि बेड़ बना बहाती थी।

कभि भौरों का गूंज थी सुनती।
कांति पद्मों कि देखती थी कभी,

धज्जियां फूल की, उड़ाती थी।
देख कलिका को, मंह चिड़ाती थी,

मोर को सैन से बोलाती थी।
बुलबुलों की सी, चह चहाती थी,

सर निकट जाके, सिर नवाती।
छाया देख अपनी मुस कुराती ीी।

ताल देती थी, गान करती थी।
नाच के नाम पर मुकरती थी।

मेल संयुक्त थी, बिगड़ती थी।
यों ही, क्रीड़ा अनेक करती थी।

सूर्य्य छिपने प' घर थी करती पयान,
पथ में सखियों से छेड़ती हर आन!

चुटकियां लेती, फबतियां कहती,
सुख परस्पर के हास्य से लहती।

जा भवन, भूषण और बस्त्र उतार,
पुनि कर सिर से पांव तक सिंगार।--

(पुनि मिस्सी जमा, लगा अंजन,
पुनि अंगों में डाल आभूषण।)

पुनि सौरभ-शरीर में मल के,
पुनि जोड़े बदन प' सज धज के।

सखियों की मण्डली में आती थी,
ताल सुर का समा जमाती थी।

बाजे बजते थे, गान होता था।
बैठे बैठे विहान होता था।

फिर वही दिन था, फिर वही थि निशा,
फिर वही वाटिका, वही घर था।

वहि फल, फूल, पेड़ पात लता,
वहि चिड़ियों का बोल मधु सींचा।

वहि गाना, बजाना, हास्य, विलास,
वहि सुख, चैन, वही हर्ष, हुलास।

हाय! वह दिन" बस इतना था कहना,

आंखे भर आई, रूक गई जिह्वा,
रंग मुंह का बदल गया छन में,

आ गया कुछ मसोस सा मन में।
दस निमिष तक न कह सकी कुछ भी,

पुनि छाती प' हाथ रख बोली।

"एक दिन थी खड़ी अटारी पर,
छबि पुर कि बिलोकती सुंदर।

उत्तम उत्तम सुवर्ण के आलय,
देख कर जिनको इन्द्र को विस्मय;

अति रंजन तड़ाग निर्जन में,
चचित होते बरूण विलोक जिन्हें;

वाटिका दिव्य, फूल की क्यारी,
कुंज गुंजान, बन सघन झाड़ी;

पालकी, रथ, मतङ्ग मतवाले,
अस्व जिनके चरण पवन चुमे;

स्त्रियां कामिनी, पुरूष सुंदर,

आते, आते, खड़े, भरे घर घर;

मन्त्री-सुत ने रम दिया धर से,
बिन कहे एक नार या नर से।

कौन सी बात ठन गई जी में,
कौन सा दोष पाया मंत्री में,

और जितने भवन में है परिवार,
किन के हाथों से, क्या हुआ अविचार,

रूप पर किसके हो गया मोहित,
कुछ न खुलता है, हैं सभी विस्मत।

बाप मा की बिपद को कौन कहे,
ग्राम-वासी हैं सबके सब रोते।

हाय! ऐसा सुशील औ' सुसंदर!
पुरूषों में, था एक मुरली घर।

इतना कह, ठंढी सांस लेती हुई,
कमला चलती फिरती देख पड़ी।

सुन, गई हो मै।, कथा सुन के,
गिरी व्याकुल धरा प', सिर धुन के।

पुनि जब मुझ में बोध प्राप्त हुआ।
(मन में कुछ सोच सांच ठान लिया,

कहिं बालम का जा लगाऊं पता,
घर करूं त्याग, बाट लूं बन का,)

मेरे लो हेतु, उसने घर छोड़ा,
मुझ की धिक्कार है, जो मुंह मोड़ा।

राज मंदिर से, रात होने पर,
छाया की भांत, चुपके, आ बाहर,

चल चली राह जिस तरफ पाई,

जी में चिंता तनक नहीं लाई।

सूर्य ने मुंह जब अपना दिखलाया,
रात गत हो गई, दिबस आया।

जौन दिश देखा बन ही बन देखा।
नाम को भी न एक जन देखा।

सारा दिन चलते चलते बीत गया,
मार्ग का किंतु कुछ पता न मिला।

(सांझ को दर्शन आप का पाकर,
कामना सर्व हो गई निर्भर।)[5]

इतना सुन सिर से झट उतार जटा,
राज कन्या से योगी[6] जा लिपटा।

"इस कमल रूप का तेरे मधुकर,
मंत्री-सुत हूं मैं ही[7] मुरली धर"।

श्री सत्यानन्द अग्नहोत्री कृत

(संगीत पुष्पावली से)

भजन

मुक्ति दाता हे, देव मुक्त जीवन।
यही एक प्रार्थना, काटो भव बन्धन;

पिंजरे में पक्षी जैसे, करे पथ अन्वेषण,
वैसे ही मम आत्म पक्षी, चाहे तुम्हे प्राणधन।

मन के बन कर अधीन, पाप से होकर मलीन;
मुक्ति चाहे दीन हो न[1], हे जग बन्दन।

भजन

आव, आव, प्राण सखा, दीन जन शरन;
करें मन, प्राण हृदय, तुम्हारे समर्पन।

त्यज अनित्य कामना, छोड़ विषय वासना;

हो के अनुगत एक तेरे, रहें नाथ चिर दिन।

सदा तुम्हारे संग रहें, प्रेम से नित नेत्र बहें;
भक्ति पुष्पांजलि दिए, पूजें तुम्हें निश दिन।

भजन

तू बिधाता, तू बिधाता, तू बिधाता, मेरा;
मैं हूं बंदा, मैं हू बंदा, में बंदा तेरा।

एक रोटी और धोती, द्वार तेरे पाऊं;
भक्ति और प्रेम सहित, नाम तेरा गाऊं।

बाहर अंतर देख तुझको, सत्य नित्य जानूं;
तब आदेश सुखी मन से, सार करके मानूं।

सत्य शिव सुन्दर हि मेरा, परम लक्ष्य होवे;
जग के उपकार हि में, जीवन यह जावे।

चंद कबि प्राचीन कृत

("पृथ्वी राज रायसा, पद्मावती खंड" से)

छप्पय

पिय पृथि राज नरेश योग लिखि कागद दिन्नेव
लगन बार सुर चौथि चैत बदि दरस सुतिन्नेव

हरि हंसै दश बीस साखि सम्वत्, प्रमानह
जो क्षत्री कुल शुद्ध बर्रान बर राखेहु प्रानह

देखत दिखिवत धरि चपल छनकत बेल बन करिय
पल गारि नैनि दिन पंच मह ज्यों रुकुमिनि कन्हर बखि।

दोहा

ग्यारह से चालीस एक युद्ध अतुल भरि रोह
कातिक सुदि बुध त्रयोदशि समर सामिली लोह।
("आलूह खंड" से)

छप्पय

हां कि पील पृथि चलेव चंदेल सनम्मुख
ईश मंत्र उच्चारि बीर बर धारि यंत्र रुख

नर पति आपु संभारि बान सधानि पानि किय
खैंचि राज की दण्ड कान लगि बान पिण्ड दिय

बेधत ही कछे देत तन फूटि सनाह है बर मिलेव
सायक बाहि संभारि धनी खग्ग खोलि डीलन पिलेब।

1ला परिच्छेद

मुंशी-स्टाइल

बारह मासा

अषाढ़ आया यह पहिला मास वर्सात
कटेगी किस तरह मेरी भलारात?
कड़क बिजुली मेरी छाती दुखावे
सखी बिन श्याम को यह दुख मिटावे?
यह बूंदी तन प' जो मेरे पड़ी है
ज़खम पिल पर कटारी की करी है!
एककाएक जो कहीं बादल यह गरजा
कलेजा दलदलाया दिल यह धड़का।
सखी खुश भाग उन के जो पिया साथ
रहै जंगल बियाबन हाथ मे हाथ।
महल में फूल के बिस्तर पर सोवे
अगर बालम नहीं तो भाग रोवे।
विदेसी सब के अपने घर को आए
हर एक मुलकों की है सौगात लाए-हैं
कोई साड़ी बनारस की ले आया
कोई चुड़ी कोई चोली है लाया।

2

न आए पिउ मेरे न हाल भेजा।
न राही से कहा सौगात लेजा।
सभी चिड़िया चुनगुन घर बनावे
मेरा घर कंत बिन कौन छावे?
अटारी चढ़ सजन की बाट जाहूं

कभी गंगा किनारे घाट जाहूं।
द्वारे जा बटोही को तकत हूं
अकेली सेज पर टुकटुक तकत हूं।
अंधेरी रैन, पिउ बिन नींद कैसी?
बिरह माती जगत में कौन ऐसी?
सभी दुख से बड़ा है दुख जुदाई
सो मुझ को हरने यह पहिले दिखाई।

2 रा परिच्छेद

मौलवी-स्टाइल

("प्रेमतरंग" से)

बाबू हरिश्चन्द्र : रसा : कृत

तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है
जो झलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है।
अरे जालिम तेरे इस तीर निगह से हम ने
चोट जैसी कि है खाई मेरा जी जानता है।
खायेंगे जहर नहीं डूब मरेंगे जाकर
जी है कुछ जी में समाई मेरा जी जानता है।

कत्ल करके न खबर ली मेरे कातिल अफसोस
ज्नां इसी दुख में गंवाई मेरा जी जानता है।
प्यार की वह तेरी चितवन व नशीली आंखे
दिल की किस तरह है भाई मेरा जी जानता है।
देके जी और पै जीने का मजा खो बैठे
जीते जी जी पै बन आई मेरा जी जानता है।
सब की फौज के पा उठ गए दिल हार गया
आंख तू ने जो लड़ाई मेरा जी जानता है।
ख्वाब में हो गया शब की तेरी मुहब्बत का खयाल
रात वह फिर न आई मेरा जी जानता है
दाग दिल पर यह रहेगा कि तेरे कूचे तक
थी रसा की न रसाई मेरा जी जानता है। ।

दिल मेरा ले गया दगा करके।

बे वफ़ा हो गया वफ़ा करके।
हिज्र की शव घटा ही दी हमने।

4

दास्ता जुलूफ़ की बढ़ा करके।
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझ को
दिल जनों को जला जला करके।
वक्ते रेहलत जो आए वाली पर
खूब रोए गले लगा करके।
सर्वे कामत ग़ज़ब की चाल से तुम क्यों
क़यामत चले वपा करके।
खुद बखुद आज जो वो बुत आया
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके।
क्यों न दावा करे मसीहा का
मुर्दे ठोकर से वह जिला करके।
क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ़
इक झलक सी मुझे दिखा करके
दोस्तों कौन मेरी तुर्बत पर
रो रहा है रस रमा करके। 2

3 रा परिच्छेद

पण्डित-स्टाइल

(काशी पत्रिका, 16 सितम्बर 1887 से)

5

पण्डित श्रीधर पाठक रचित

जगत सचाई सार

कहो न प्यारे मुझ से ऐसा--"झूठा है यह सब संसार।
"थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार" ॥
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्संदेह।
फिर भी तो छाड़ा नही जाता, पल भर को भी उन से नेह ॥

लगा हुआ है वस्तु मात्र का एक दूसरे से संबंध।
दूषित क्यों कर हो सका है उस कर्ता का अटल प्रबंध ॥

जगत है सच्चा, तनक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद।
पीओ, खाओं, सब सुख पाओ, कभी न लाओ मन में खेद॥

"मिट्टी उढ़ोना, मिट्टी बिछौना", मिट्टी दाना पानी है।
मिट्टी ही तन बदन हमारा सो सब ठीक कहानी है ॥
पर जो उलटा समझ के इसको, बने आपही ज्ञानी है।
मिट्टी करता है जीबन को और बड़ा अज्ञानी है ॥

मिट्टी क्या है माचो तो टुक अकल लड़ाके प्यारे मित्र।
पंच महाभूतों में धमके देखो इसकी बात बिचित्र ॥
परम पवित्र पावली पृथ्वी, भरी सकल सुघराई से।
पद पर शोभा से छाई, ईश्वर की चतुराई से॥

अति अमोल रत्नों की जननी, सब द्रव्यों की माता है।
सदा सुधा रस भरी, खरी, यह सब प्रकार सुख दाता है ॥
सब जीवों की भौतिक काया इस से पोषण पाती है।
जीब से नाता छूट जाने पर इसी में वह मिल जाती है ॥

6

तुम से, पृथ्वी से मिट्टी से है इतना ही संबंध।
काम तुम्हारे आती है वह, सुंदर यह प्राकृतिक निबंध ॥
समझ के मारे जगत को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाता है।
मिट्टी करके सर्वस अपना, मिट्टी में मिल जाता है ॥

कभी नहीं ऐसा मूरख नर मार सृष्टि का पाता है।
जैसा ही आया था जग में, वैसा ही वह जाता है ॥
इस शरीर से जो मनुष्य नहिं कुछ भी लाभ उठाता है।
उससे तो वह पशू भला जो काम सैकड़ों आता है ॥

उसका जन्म व्यर्थ है जो नर पौरुष कुछ न दिखाता है।
न इस लोक ना उसी लोक में हाथ उसे कुछ आता है ॥
पृथ्वी को भी ऐसा कायर वृथा भार पहुंचाता है।
अपना जीना ही जिसको एक बड़ा बोझ हो जाता है ॥

जो तन मन से करता है श्रम, उचित रीति ले चलता है।
सारी बसुधा का क्रम क्रम से सर्वस उसको मिलता है ॥
हाथ, पैर और नाक, कान, बृद्धि से काम जो लेता है।
जीवन का सुखपाता है वह औरों को सुख देता है ॥

पुत्र, कलत्र, मित्र, वान्धव में फैलाकर सच्चा आनंद।
काम जगत का करता है, वह रहता है सुख से स्वच्छन्द ॥
दुख कब ऐसे पुरूष सिंह के पास फटकने पाता है।
वह तो आलस का साथी है, आलसियों पर जाता है ॥

जब तक तुम इस जग में सच्ची धर्म रीति पर चलते हो।
तब तक निस्संदेह निरंतर सब बातों में फलते हो ॥
सारासंसारिक सुख पाकर ईश्वर को पिहिचानो हौ।
उसकी विद्यमानता, सत्ता, वस्तुमात्र में जानो हौ ॥

7

रचा उसी का है अब यह जग निश्चय उस को प्यारा है।
इसमें दोष लगाना अपने लिये दोष का हारा है ॥
ध्यान लगा के जा देखो तुम, सृष्टि की सुघराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को ॥

ये सब भांति के पक्षी, ये सब रंग रंग के फूल।
ये बन की लह लही लता नब ललित ललित शोभा की मूल॥
ये नदियां, ये झील सरोवर कमलों पर भौरों की गुंज।
बड़े सुरीले बोलों में अनमोल घनी वृक्षों का कुंज ॥

ये पर्वत की रम्य शिखा और शोभा महित चढ़ाव उतार।
निरमल जल के सोते झरने, सीमा रहित महा विस्तार ॥
छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के संग।
पाकर काल बनस्पति फलना रूप बदलना रंग बिरंग ॥

चांद सूर्य की शोभा अद्भूत, बारी से आना दिन रात।
त्यों अनंत तारा मंडल से सज जाना रजनी का गात।
त्यों समुद्र का पृथ्वी तल छाया जा जलमय विस्तार।
उस में से मेघों के मंडल हों अनंत उत्पन्न अपार।

लर्जन गर्जन घन मंडल की बिजली बर्षा का संचार।
जिस में दीखे परमेश्वर की लीला अद्भूत अपरम्पार ॥
उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है।
कहीं पै जल मय, कहीं रेत मय, "कहीं धूप कहीं छाया है"॥

विविध रूप का अनोखा अचरज जिस के बीच समाया हैं
कोई कहता "कुदरत" जिस को कोई कहता "माया" है ॥
पांच बजे तड़के उठके जिस दम हम नहाते धोते हैं

आधी रात होने से उस दम लंडन वाले सोते हैं ॥

8

यहां जिन दिनों गर्मी से सब के घर पंखे झलते हैं।
अस्ट्रेलिया वालों के घर में गरम कोयले जलते हैं ॥
इस प्रकार के दृश्य अनेकों दृष्टि नित्य जब आते हैं।
अचरज युक्त अनुपम अनुभव वे मन में उपजाते हैं ॥

इन सब के कारण से होता नहीं है किस के मन को सुख।
कभी किसी को बताइये तो पहुंचा है इन से कुछ दुख? ॥
सब स्वभाव के मनुषय जिसकी सदा प्रशंसा गाते हैं।
जोगी, जती, रिक्त, उदासी भी उत्तम बतलाते हैं ॥

जो नेत्रों से दिखाई देता, कानों से सुन पड़ता है।
जिसको चित्त ग्रहण करता है जिससे कुछ न बिगड़ता है ॥
सत्पुरूस्षों ने जिसकी बारम्बार पुकारा अच्छा है।
जो वोही नहिं सच्चा है तो भला और क्या सच्चा है ॥

जिसका यह सब रचा हुआ है वह परमेश्वर सच्चा है।
जगत के सच्चे होने का मत, क्यों करके तब कच्चा है?॥
जो सच्चा है वह प्योरा है, वही सकल सुख का भंडार।
वही मनुष्यों के जीवन को देता है आनंद अपार ॥

जगत को झूठा झूठा कहके करो नहीं उसका अपमान।
बुद्धि को अपने काम में लाओ हे मनुषय हे बुद्धिनिधान ॥
जिसको तु जानो यह दुख है सहो उसे धीरज के साथ।
दुख में सुख का अनुभव करना, है मनुष्य को अपने हाथ ॥

दुख तो मनुष्य के जीवन की एक कसौटी है मानो।
इस में जैसा रहे रंग, वैसा ही भाव उस का जानो ॥
काम क्रोध औरलोभ मोह भी जीवन के सहयोगी है।
अनुचित बर्तावों से केवल हो जाते प्रतियोगी है ॥

9

इनको जो अपने मन से जड़ मूल मिटाना चाहे हैं।
वे असमथ्र कभी न जगत का सत उद्देश्य निवाहे हैं॥
जैसा यह जग बना हुआ है, वैसा इसको पहचानो।
ईश्वर की व्यापकता इसमें सभी ठौर प्यारे जानो ॥

देख देख उसकी महिमा, गुण निशिवासर उसके गाओ।
अर्थ, धर्म औरकाम मोक्ष पाने में पौरुष दिखलाओ ॥
रूप जगत का यथार्थ देखो पड़ो भूल में कभी न तुम।
जीवन के कर्त्तव्य निवाहो, समझ के उसके शुद्ध नियम ॥

चलोगो सच्चे मन से जो तुम निर्मल नियमों के अनुसार।
तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचई सार ॥

(भाषा प्रभाकर से)
पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कृत
31 अक्षर वाला कवित्त छन्द

अमृत के रस की भरी सी उस ुरली को कब प्यारे आके
; मेरे सामने बजावेगा?
अमृत कदम्ब पर चारों ओर देख भाल हाथ को उठा के कब
: बच्छो को बुलावेगा?
अम्बादत्त कवि को रसीली कविता की सुन मुकुट झुका के
: कब फिर मुसकावेगा?
मुझ से गंवार की पुकार बार बार सुन सांवले सलोने कब
: दरस दिखावेगा?

4 था परिच्छेद

(अल्पंच--16वीं जुलाई सन् 1885 से)

बकीये मजूमन

यूरेशियन वासोख़

साथ हर सुबह को यों होता था हम दोनों का।
शब को एक जा प गलत होता था गम दोनों का।
हाय! क्या क्या नहीं करता था गिला एक से एक?
एक मोमेंट जो रहता था खुदा एक से एक।
moment

चुप रहो, चुप रहो, अच्छा नहीं अब तूल मक़ाल।
कुछ भी मोडेस्टी का इनसान को लाजिम है ख्याल।
modesty

मुखसर यह कि इसी तौर से गुजरा एक साल।

झूठ कहती नहीं वाकिफ़ है खैदाय मताल
क्या कहूं? चर्ख जफ़ाजी न इसे देख सका।
दफफेतन ऐश में बंदी के खलल आन पड़।
एक दिन बैठी थी मै। घर में कि आयाा वह निगार,
कौन्टिनेंस से कुछ फ्रिक के जाहिर आसार।
counternence

11

मैंने पूछा कि बता खैर है? क्या है इस्रार?
वे सबब आज नहीं ज़र्द यह तेरे रुखसार।
बोला सर पीट के अब खैर नहीं है, जानी!
कल घसीटे लिये जाता है यह दाना पानी।
आज यह आलमे बाला से है पहुंचा और्डर।
order

शख्स आखिर के बेबस चार्ज में दे दूं दत्फ़र।
charge
मैं समझता हूं कि इन बातों की पहुंची है खबर।
जब तो यों संडली आई है मुसीबत मुझ पर।
suddenly
गम नहीं इस का कि इस शह से आते है हम।
इस का मद्मा है कि तू छटती है, खालिक की कसम
इतना सुन्ना था कि तारी हुई मुझ पर रिक्कत।
दिल की यारा न रहा जस का, ओफरे उलफत।
बाद दो घंटे के जब ठीक हुई कुछ हालत,
अपने फादर से कहा मैंने यह करके मिन्नत।
father
इस के रहजाने से है मेरी भलाई, पापा।
papa
कीजिये कीजिये कुछ आप टराई, पापा।
try papa
मेरी दर्खास्त का फादर ने दिया तब य जवाब--
father
सुबह से आज इसी फ़िक्र में हूं में बेताब।
हाल मुझ से तो ज्यादा है तेरी मां का खराब।
एक तेरी वजह से उर्स को भी जुदाई है अजाब।

12

कारगर होती नहीं कोई भी अस्ला तदबीर।

कुछ समण में नहीं आता है, करूं क्या तदबीर?
ऐडवाइस तुम्हें एक करते है। मानो उसकी;
advice
याने चंदे के लिए दिल को अभी समझाओं।
बद गुमानी का य लोगों का निकल जाने दो,
फिर खोदा चाहे तो जिस बा को चाहें वही हो।
देखो समझाते है हम मानो हमारी बातें।
मसलेहत से अभी खाली है तुम्हारी बातें।
सुन के फ्रादर की जबां से यह मुहब्बत के कलाम,
father
दिल तो उमड़ा, प लिया जप्त से म न वां काम।
जोड़ कर हाथों को की अर्ज, कि ऐ आला मोकाम।
आज से अब न कभी लूंगी मै। उस शोख का नाम।
मैं भी राजी हूं अगर आप की मर्जी है यही,
पर प्रौमिस की रहे याद, जनाबे आली।
promse
अलगरज दूसरे दिन तड़के ही पव जबकि फटी,
आया रूसखत को मेरे पास मेरा परदेसी।
उस वह फेस ग्लूमी वह लबीं पर शाई
face gloomy *shy*
है फ्रेश हाफ्ज में बंदी न अब तक भूली।
fresh
पहिले हसरत से मेरा उस ने सरापा देखा।
दौड़ कर फिर मुझे लिपटा के गले स यह कहा।
म तो जाता हूं तेरा हाफिज वो नासिर अल्लाह।

13

पर रहे मुझ प जरा चश्में एनायत की निगाह।
क्या क्रुएल है मेरे हाकिम आला, तोबाह।
cruel
दिल दुखाना भी नहीं कास्ट में इन की है गुनाह
caste

अल्पंच,--12वीं, फरवरी 1886 से

उर्दू अंगरेजी की खिचड़ी

क्यों नन हों ब्लैक जेर मशके ह्वाइट नाउएडेज?
black *white mowadays*

यह है पावर फुल वह है बेजार वो माइट नाउएडेज
powerful *might nowadays*
रेंट लौ का गम करें, या बिल आफ इनकम टैक्स का?
rent law *bill of income tax*
क्या करें? अपना नहीं है सेंस राइट नरउएडेज।
sence right nowadays
फंस गई जानें हमारी किस मुसीबत में? एलास।
alas
नींद तक आती नहीं है होल नाइट नाउएडेज।
whole night nowadays
रात दिन गुजरे ताब में फिर्कए ब्लैक के
black
चैन बस काटा करें हजरात ह्वाइट नाउएडेज
white nowadays
एक आफत तोड़दी भूपाल और कश्मीर पर।

14

डौग से कुछ कम नहीं है इन का बाइट नाउएडेज
dog *bite nowadays*
तसफ़ीया सर्हद का बारे हो गया अब चीन से;
शोर वो शर करते नहीं हैं मस्क, आइट नाउएडेज
maskaite nowadays
पीस का नाम वो निशां अब वर्लड में बाकी नहीं।
world
हरतरफ सुनने में आता है टू फ़ाइट नाउएडेज
to fight nowadays
थे जो मस्लह वर्लड के अब है सीमी बारबेरियन।
और जो सैवेज पहिले थे वह है पोलाइट नाउएडेज
savage *polite nowadays*
एम.ए.ए. स्कूल गो कायम हुआ इस शह में,
वैसा ही सोते हैं अक्सर पटनाइट नाउएडेज।
patnite nowadays
सर्फ़ बेजा करते हैं हसात में देते नहीं।
कुछ समझते ही नहीं यह रोंग राइट नाउएडेज।
wrong right nowadays
एक सिरे से काम की बातें इन्हें आती नहीं।
सिर्फ़ आता है इन्हें टु प्लाई काइट नाउएडेज
डार्कनेस-छाया हुआ है हिंद में चारो तरफ।
नाम की भी है कहीं बाकी न लाइट नाउएडेज।

हम अली गढ़ में गुजारेंगे विकेशन अपना।

15

नेचरियों से मिला लेंगे रिलेशन अपना।
तर्क मज़हब से अगर हिन्द में बदनामी है।
जाके लन्डन में बदल डालेंगे नेशन, अपना।

ज़ाया जो उन का कोई मोमेण्ट हो गया।
बिल्कुलखज़ाना माल का वैकेन्ट हो गया।

शेर--

लबे वर्ग पुना है वो सियह मिर्च खाल है,
रूख का पसीना तेरे पिपरमेंट हो गया।

मैं नेटिव फौरेन मुलकों का संयोग मुझे यहां लाया है।
मैं आया पढ़ने लिखने को तेरी व्युटि ने मुझे सताया है।

5वां परिच्छेद

(अशुद्ध हिंदी)

मुंशी-स्टाइल

यूरोपियन स्टाइल

ध्यान में जिस दम नई तहजीब को लाटा है हम,
छोड़ काबे को लन्डन में चला जाटा है हम।
नाच घर में या कमीटी में अगर जाटा है हम
बिउटिफुल लेडी को साथ ले जाटा है हम।
ओढ़ कर पटलून ओट अल्पकाव गोल टाप
अपना फ़ैशन लौंडो का सा बना लाटा है हम।
पांव में है हाफ़ बूट और हाथ में लम्बा बेंत,
उस को घुमाटा हुआ घर से निकल जाटा है हम।
हाजत पेशाब और पायखाने की हुई तो वां
मेक वाटर कह खड़े ही मेंह सा बरसाटा है हम।
नाम पर्दा का व लें जोरु को खें कैद में काले

लोगों की यह बाटें सुन के जल जाटा है हम।
हम मुहज्जिब है मरोरी मुर्गी खाने का है शौक
और जामें शामपीन को पीके फर्माटा है हम।
बीन बाजे पर फड़क कर नाचना हैगा रबा
सिविलिजेशन की हदीसों से सनद लाटा है हम।
नीम नंगा होके मिस जब नाचटी है राट को
है कसम दुमदार टोपी की कि मर जाटा है हम।
मुल्ला को क्या खबर उस लुत्फ़ की
जो मजा और तुटफ्र ऐसे नाच में पाटा है हम।
सरके बल लनूडन नजाये जब लतक यह अह्लहिन्द
वह मुहज्जिब ही न होगा ठीक फर्माटा है हम।
है खयाली खौफ़ मजहब में जहन्नुम का ब्यान
खौफ़ दुनिया में मगर लब पर नहीं लाटा है हम।
अहले यूरप जब कि हम को कहटा है रिफ्रौर्मर

17

ध्यान में फिर हिंदयों का कव भला लाटा है हम।
उस बुते लनड्न की हम तो आंख के बीगार है
पंच साहब हाल तो यह है जो फर्माटा है हम।

6वां परिच्छेद

मुतफ़र्कात : विविध

Miscellaneous.

सैर खाब अजतसीफ़ असर हुसेन।

मैं यह बैठा हुआ समझता था अपने दिल को।
खूब की गोशनशीनी जरा चल फिर तो लो।
दिल की खाहिश हो जहां वां तमाशा देखो
यहीं कहता था कि नींद आगई उस दम मुझको।
मैंने जो खाब देखा है वह सुन कर हंस लो।

18

पहुचा तिहुंत में तो एक मर्द मुसलमां देखा
पूछने मुझ से लगा, घर हौ कहां पर तोरा?
कहां आयह? कहां जैह? हिया रहिय का?
देख इमामा कहा खूब ही सिर का फेटा।
मोलवी आय हैं, देख त जरा चच्चा हो।
निकला दर्या की तरफ सैर के खातिर जो मै।
देखा नंगी कई छोकड़ियां गुसुल करती है।
दिल में आया कि उसी गोल में हम कूद पड़ें
देख डाढ़ी को मेरी कहने लगीं आपस में।
राम। भिन्सार मुंह स्नसान कर्रत की देख लों।
निकलीं दर्या से वह फ़िलफ़ौर घड़े सर पर धरे
चलीं कहती हुई "गोविंद! हरे कृष्ण! हरे!"
तुर्क मुंह में अपने देखो लौहं तखन हमरा के,
हम न जाएब कोई ठांव आई में अपने संगे।
एक टा गौ दान के लेहे अरे रमचेखारो!
गौ हुई दान तो लेने को बरहमन आया
गाए से दान हकीकत में मुसललां एक था।
दान पापा के वह भिखार बरह न हरजा
हुआ खुशदिल तो मुसलमान के लिये कहता चला।
राम जो दसटा मुसलमानक नित दर्शन हो!
वां से फिर चलूं के मैं आखिर को कलकत्ता पहुंचा
एक मुहल्ला जो है मशहूर वहां ताल तला

19

देखा बंगालिनें कस्बी है बहुंत सी एकजा
कोई चलता है तो कहती है कि एशो माशा।
मेरबानी कोरे आगार बाड़ी ते थाको।
बाबू! रड़िर मदेर आमी तो चमत्कार आशो
आपनी बाबू आशेन, आमी आशा आपनार आर्शो
आखिरश जिस ने शौक़ से की शब बासी
सुबह को निकले वह चेहरा किये अपना माशी
और वह कहती है कि टाका आमार दीते जाओ
बढ़के देखा कि अगरेजिने वां पर एक सर
कुर्सिया मोढ़े लगाये वतकल्लफ़ घर घर
खुश लेबासों को पुकारे है कि वेल माई डियर।

well my dear

विल यू बी काइन्ड एनफ़ ऐज टु कम ओवर हियर

will you be kind enough as o come over here

लोग मुश्ताक हुए चल के जरा देखें तो
हुए दाखिल तो किया उसने मोहब्बत से कलाम
डाल कर हाथ गले में दिया दी मैं का जाम
वक्त मोहब्बत लगी करकने मोकर्रर अनआम
दस रूप से जो कहा कम तो बने फूल और डाम
foll dam
उठ के भागे तो सिपाही से कहा बेल पकड़ो।
देखा कलकते में मैंने जो यह सब मक्र वो फ़तूर
भागा हंसता हुआ वां से बदिले नामसूर
पहुंचा एक चश्मे अदन में बशह गाजीपुर।

20

खत्री जो आये नजर चंद बकारे मजदूर
कहा हिंदू में तो अलबत्त बहादुर तुम हो
बोला हमनि म जे बरियार ह आवत बाटे
लाठी मोंटन में त हर्मान में कोऊ घाटे
देखौं, सेरन, गंड़िये, फारै
तेगा हमनि के भया लोहा के खचख काटे
कहा सच मुंह से तुम अपने मिया मिट्ठू बनलो
पहुंचा काबुल के करीब जब तो उड़े मेरे होश
काबुली लोग नजर आए वहां कम्मल पोश
बोले, कुम अर्गले? चरजल लजे? आगा! ओश ओश
चैन डौडी खोड़िली, डावड़ा जिगुल खन गोश
और ऊंटों को चराते थे वह कह हुश हुश शो
वह काबुल में जो आया तो यह नेमत पाई
एक हमीन आन के बोला "ज्रे कुजामी आई"?
कहा हिन्दीम वो दिल दादे ता शदाई
बोला शोखी से वह हंस कर चे सोखन फर्माई?'
खाही गरशह बेबीनी व्या हम्राहम शो
दिल जा एक बारगी काबुल से बहुत घबड़ाया
खास पंजाब में पहुंचा तो अजब नक्शा था
कंजरी एक शाख मितमगार को मैंने दखा
बोली का लोढ़? तनु चंदड़े हो, अस्मी वेखा
साढ़े वल आब तुसी कौन हो? मानु दस मो
मैं बमिन्नत यह कहा उस में कि ऐ रश्क कमर।

21

क्या हाले परीशां की नहीं तुझको खबर?
जुस्तजू में तो तेरे ही मैं फिसइं दर दर

गर्दिशे बक्त ने खिलावाए हैं लाखों चक्कर!
किस्मतों से तो मिला आज बगल गौर तो हो
सुन के यह बात गुरेजां हुई वां से वह हूर
लखनऊ आया तो फिर दिल हुआ अपना मसूर
यानी एक रशक कमर हुस्न प अपने मगरूर
दरे खान से हुई देख के मुझको काफूर
और चिल्लाई मैं सदके मेरी अन्ना दौड़ो।
आके एक दाई ने बातों मे किया मुझ से अयां
अश्क ग़मजे को जगह यह तो नहीं है मियां
हो चुका जाइये बस आप को जाना हो जहां
सुन के यह बात न दम लेनले को ठहरा में वां
दिल का हरदम यह तकाजा था कि भागो भागो
देखा एक जा प है महफिल रक्म और तरब
जमघटा यारों का है रक्म के समान है सब
मांदए राह तो याही वहां नींद आई राजव
लोग कहने लगे तड़के को उडी महफिल जब
शाम के सोए हुए मर्द मोसाफिर जागो
नींद से आंख खुली जब तो न वह जलसा था
न वह महफिल थी न अहबाब का वह गुनचा था
फिर तो काबुल का सफर था न वह कलकत्ता था।

22

कहा अखतर ने यह गफलत थी तेरी और गया था
खाब ही खाब है सब दीदए ग़फ्लत खोलो।

परिशिष्ट

(श्री हरिश्चन्द्रका, अगस्त सन 1885 से)

मुशायरा

चिड़िया मार का टोला
भांत भांत का जानवर बोला।

गजल

गल्ला कर्ट लगा है कि जो है सो है,
बनियन का गम भवा है कि भैया जो है सो है।
लाला की भैंसी शोर निचोवत मां शाशी जब,
दूध मोह मा लि गवा है कि भैया जो है सो है।
इक तो कहत मां मर मिटी खिलकत जो हेगा सब,

तेह पर टिकम, बंधा है कि भैया जो है सो है।
अंगरेज से अफगान से वह जंग होता है,

आगे फटा हुआ है

कुप्पा भए हैं फूल के बनियां व फर्त्ते माल।
पेट उन का दमकला है कि भैया जो है सो है।
अखबार नाहीं पंच से बढ़कर भवा कोऊ,
सिक्का यजम गवा है कि भैया जो है सो है।

इसके बाद लाला साहब ने रें रें करके एक होली भी गा ही दी।

कैसी होरी खिलाई?
आग तन मन में लगाई,
पानी की बूंद से पिंड प्रगट कियो,
सुंदर रूप बनाई।
पेट अधम के कारन मोहन
घर घर नाच नचाई।
तबौ नहीं हवस बुझाई
भूंजी भांग नहीं घर भीतर,
का पहिनी का खाई?
टिकस पिया मोरी लाजा कां रखख्यो,
ऐसे बनो न कसाई।
तुम्हें कमर की दोहाई।
कर जोरत हों बिनती करत हों,
छोड़ौ टिकस कन्हाई।
आग लगी ऐसी फाग के ऊपर,
भूखन जान गंवाई।

(आगे का भाग फटा हुआ है।)

Jawaharlal Nehru University Library